मूल्य रु० ६/-

कार्तिक–मार्गशीर्ष २०५८ दिसम्बर २००१

स्वदेशी

राष्ट्रीय स्वाभिमान, आर्थिक स्वावलंबन, राष्ट्रीय पुनर्रचना तथा स्वदेशी संदेश की संवाहिका पत्रिका

कितनी सफल रही दोहा में भारत की भूमिका ?

Scanned with OKEN Scanner

विशाल वृक्ष का राज

पारिजात पुष्प

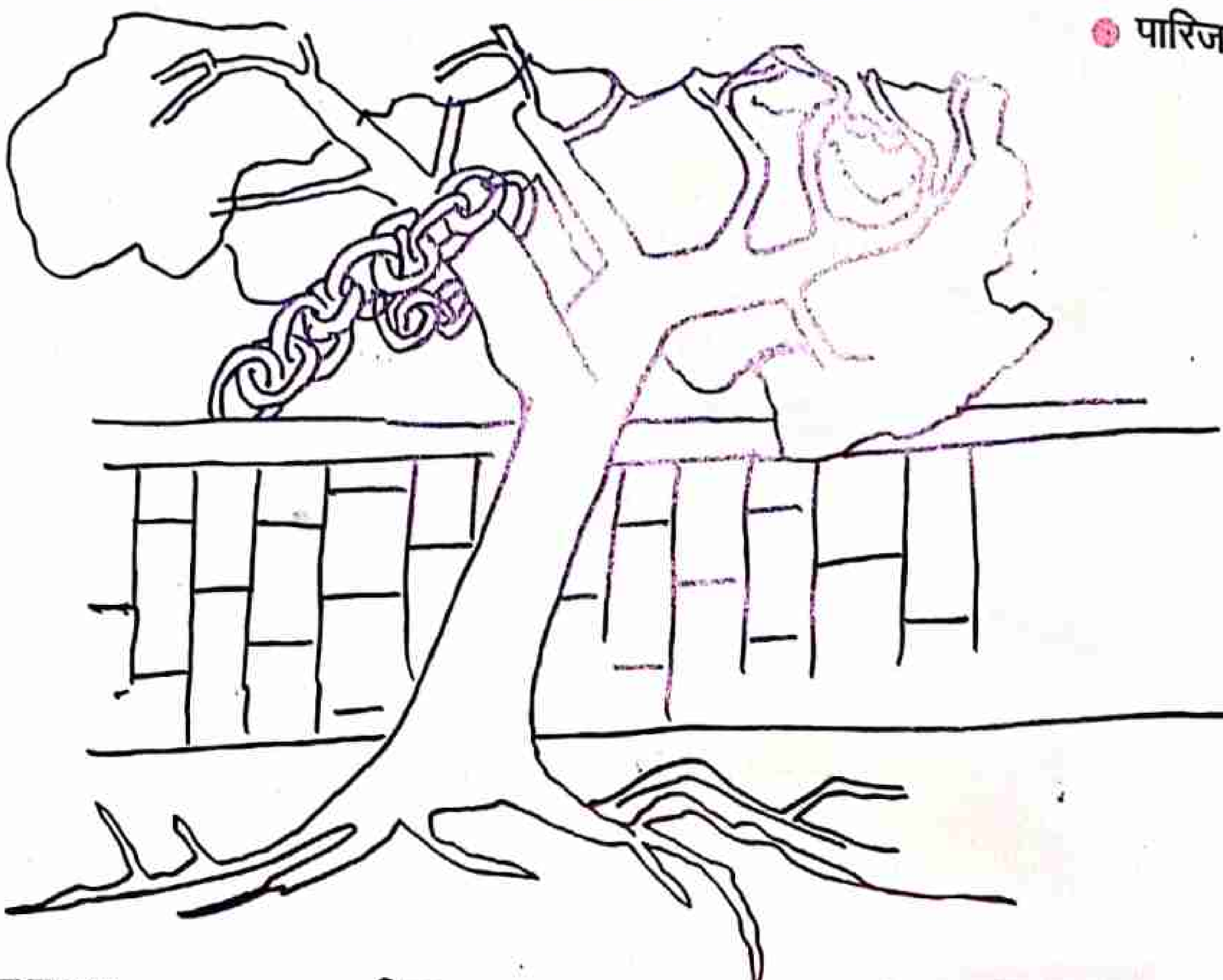

बस इसी शर्त पर बना था
विशाल वृक्ष का राज
कि वह मिट्टी में डूबकर
अनजान हुई जड़ों का
जहाँ तक होगा फैलाव
अपने शीर्ष के
हरे-भरे पत्तों से वहाँ तक
दिलाता रहेगा शीतल छाँव,
मिट्टी के रस से जीवन
पाते रहने के लिए।
बस इसी शर्त पर बना था
विशाल वृक्ष का राज
कि डालें फूलेंगी-फलेंगी
गुनगुनाती-गाती हवा के साथ
झूमेंगी-नाचेंगी
देखेगी उन्हें दुनिया
और सराहेगी।
पर, वे झुकेंगी
सिर्फ जड़ों के आगे ही।
बस इसी शर्त पर बना था
विशाल वृक्ष का राज
कि मोटा-मजबूत बनेगी तना
जड़ों को डालों पत्तों से
रखेगी जोड़कर,
सहजात है इन सबका संबंध,
लेकिन, चाहर दीवारी के पार के
लोगों ने बाँधी थी डालों में जंजीरें
फल-फूल छाँह समेटने लगे
अपने हिस्से,
वृक्ष भी झुकने लगा,
जमीन से उजड़ने लगी
उसकी जड़े।
मंत्रियों-व्यवसायियों और साहबों के
बेटी-दमाद, बेटे और बहुएँ
वृक्ष से चढ़कर उतरने लगे
चाहरदीवारी के पार,
उन विदेशियों में होने लगे शामिल
जिनके पास बड़े बड़े क्रेन हैं
वृक्षों को ऊपर उठा लेने वाले।
वे किसी वृक्ष का वजूद
झुका लेते हैं अपने हक में।
उन्होंने ही विशाल वृक्ष के राज का
बना दिया एक मुर्दा परिचय
कि वह एक सीढ़ी है सिर्फ सीढ़ी,
चढ़ने उतरने की।
नहीं होता किसी वृक्षों को अपना राज
चिड़ियों के घोसलें
नहीं होते वृक्षों पर,
चिड़ियों की चहक से
नहीं होता वृक्षों की
साँसों का कोई संबंध।
रट रहे हैं लगातार यही पाठ
पैसों के पंख पर उड़ने वाले लोग।
वृक्ष समझेगा
एक न एक दिन जरूर समझेगा
जड़ों की अकूत ताकत
और वह झुकना छोड़ देगा।
तब बेशक मशीनों की क्षमता
घुटने टेक देगी
धरती के साथ रहने वाली
जड़ों के आगे....।

Scanned with OKEN Scanner

अपनी वार्ता

प्रिय पाठक वृन्द,

आपको याद होगा स्वदेशी पत्रिका के सितम्बर, 2001 के अंक की अपनी वार्ता में लिखा गया था, दोहा कतर में होने जा रही विश्व व्यापार संगठन की बैठक में विकासशील देश अपने पक्षों को सबलता से रख पाएँगे ऐसा हुआ लेकिन तब जब भारत को सबसे आगे आकर पहल करना पड़ा इस पहल में भारत को यह भी अनुभव हुआ कि कमजोर साथी अपने स्वार्थ को लड़ाई की तुलना में अधिक महत्व देते हैं। ऐसा दिखा कि भारत के साथ छोड़ भाग खड़ा होने में दूसरे विकासशील देशों को कोई संकोच नहीं है। ऐसी दशा में क्या हमें अपनी लड़ाई के लिए स्वयं को शक्ति सम्पन्न करना आवश्यक नहीं है? बिल्कुल हैं। तब यह कार्य होगा कैसे? राष्ट्र के प्रति अटूट भक्ति से।

दोहा की चुनौतियों को स्वदेशी पत्रिका के इस अंक ने अपना अग्रलेख बनाया है। भारत की पहल और चुनौतियों की समीक्षा की गई है। हम आपकी सार्थक प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करेंगे।

नमस्कार।

आपका

प्रमोदकुमार दुबे

अनुक्रम

अग्रलेख

कितनी सफल रही दोहा में भारत की भूमिका?
पी.डी. कार्त्तिकेय एवं धी. द्विवेदी..../६

भारत ने पहली बार राष्ट्रवादी दृढ़ता का परिचय दिया
अवधेश कुमार......................../१२

हमारे किसानों को लूटने की साजिश है : विश्व व्यापार संगठन
डॉ. कुँवर जी भाई जाधव............/१५

ट्रिप्स, दोहा वार्ता और भारत
बी.के. कैला................................/१७

लेख

धार्मिक ग्लोबलाइजेशन का रास्ता
डॉ. भरत झुनझुनवाला................/२१

खाद्य पदार्थों पर एकाधिकार की अमरीकी भूख
देवेन्द्र शर्मा../२३

सम्बोधन : स्वदेशी के साथ धर्म व्यापक अर्थ में जुड़ा हुआ है
विद्यानिवास मिश्र........................../२५

भारत में बहुराष्ट्रीय निगमों तथा कॉरपोरेट प्रशासन की चुनौतियाँ
प्रो. बी.डी. टण्डन/डॉ. ए.के. वशिष्ठ............../२८

खुदरा व्यवसाय पर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की काली छाया
मुकुन्द कुमार........................../३१

संस्कृति

शिव–संकल्प का द्योतक है त्रिपुण्ड के नीचे दमकती रोली
डॉ. प्रमोद कुमार दूबे......................../३६

स्तंभ

पाठकनामा/४, उन्होंने कहा/४, ऊर्जा/३३, माध्यम/४०, स्वदेशी व्यंग्य/४२, समाचार परिक्रमा/४७

संपादकीय कार्यालय : ६०, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली-११० ००१ • दूरभाष : ३०१८१७५
ई-मेल : swadeshisampark@rediffmail.com

स्वदेशी
पत्रिका

वर्ष–७, अंक–३
कार्त्तिक-मार्गशीर्ष २०५८, दिसम्बर, २००१

:: अमर वाणी ::

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा, एकं रूपं बहुधा यः करोति। ततात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥

प्रभो! तुम एक हो। सारे ब्रह्माण्ड को वश में रखने वाले हो। सब प्राणियों के अन्तःकरण में विराजमान हो। एक प्रवृत्ति से नाना प्रकार के पदार्थ उत्पन्न करते हो। जो धीर, विद्वान्, योगी आपको अपनी आत्मा में ठहरा हुआ देखते हैं, उन्हीं को सच्चा सुख प्राप्त होता है, दूसरों को नहीं।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्, एको बहूनां यो विदधाति कामान्। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥

प्रभो! आप नित्यस्वरूप हैं, चेतनरूप हैं, आप एक हैं, आप भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। आपको जो लोग अपनी आत्मा के अन्दर साक्षात् कर देखते हैं, उनको वास्तविक तथा निरन्तर शान्ति प्रदान होती है। (भक्ति दर्पण)

मुख्य संपादक :
डॉ. महेश चंद्र शर्मा

कार्यकारी संपादक :
डॉ. प्रमोदकुमार दुबे

मूल्य : एक अंक – 6 रुपए
वार्षिक सदस्यता शुल्क – 60 रुपए
आजीवन सदस्यता शुल्क – 1000/–

विशेष सूचना : अपनी सदस्यता सूची एवं सदस्यता फार्म में कृपया अपना नाम व पता, पिनकोड सहित साफ–साफ शब्दों में लिखकर भेजें।

Scanned with OKEN Scanner

पाठकनामा

भारतीय अर्थदृष्टि बनाम समाजवाद

किस करवट बैठेगा दोहा-वार्ता का ऊँट? अब यह सवाल नहीं रहा – इसका उत्तर मिल गया कि सभी देशों के स्वार्थ का हँसिया अपने-अपने पेट की ओर ही खींचेंगा। हमारे एक कम्युनिस्ट मित्र ने लेख पढ़कर कहा कि यदि भारत ने कमजोर देशों का प्रतिनिधित्व किया और दुनिया में अमीर गरीब देशों में बढ़ती खाई को पाटने का बीड़ा उठाया - साम्यवादी दिशा में आगे बढ़ा तो यह हमारे मंदिर के देवता की मूर्ति की चोर के समान है। भारत के पास कोई क्रांतिकारी अर्थनीति स्थापित नहीं है। कम्युनिस्ट विचारधारा को अपहृत कर अपनी बात आगे रखना उचित नहीं। स्वदेशी पत्रिका से क्या हम आशा कर सकते है कि वह इस विषय में लेख प्रकाशित करेगी?

– **डॉ० अरुणकान्त**, पटना (बिहार)

काल के अध्ययन का नाम ही ज्योतिष है

सम्पादक महोदय,

स्वदेशी पत्रिका का नवम्बर का अंक बहुत अच्छा लगा। ज्योतिष जैसे सामयिक विषयों को स्थान देना अच्छा लगा। डॉ० प्रमोद कुमार दूबे चहुँमुखी प्रतिभा के धनी है। समय की अविराम क्रिया से कौन बचा हुआ है। काल ही वह पुरुष है जो सृष्टि को रचता है, नियमित करता है और संहार करता है। काल के एक अध्ययन का नाम ही ज्योतिष है। यह आधारहीन या तथ्यहीन नहीं है। भूली-बिसरी इन पगडंडियों पर आप हमें यूँ ही ले जाते रहे। डॉ० कामेश्वर प्रसाद उपाध्याय के विचार भी सुन्दर लगें। कुछ लेखकों से पत्र-व्यवहार करना है, किसी अंक में पता लिखा दें। पत्रिका नियमित निकालने और पहुँचाने के लिए भी धन्यवाद।

– वैद्य रतिराम टाक

राम पुस्तक माला, सर्वोदय बस्ती, बीकानेर (राजस्थान)

स्त्री का पूर्ण व्यक्तित्व खड़ा हो

सम्पादक जी,

स्त्री पर आजकल बहुत आंदोलनकारी लोगों की नजर हो गई है जो दिन-रात स्त्री को क्रान्ति का हथियार बनाने पर तुले हुए हैं। विश्वासी और भावुक प्रकृति के कारण स्त्रियाँ तथाकथित प्रगतिशीलों की ललकार से प्रभावित हो सकती हैं लेकिन ये लोग स्त्री के पूरे व्यक्तित्व को विकसित होने देने में बाधक है यही इनके सर्वनाश की कब्र खोदेगा। मैं सुषमा शर्मा को स्त्री के पूर्ण व्यक्तित्व को खड़ा करने की अपेक्षा को प्रशंसित करती हूँ।

– श्रीमति सविता सिंह

भोपाल (मध्य प्रदेश)

उन्होंने कहा

विकसित देशों की मंद अर्थव्यवस्था में तब तक तेजी संभव नहीं है जबतक वैश्वीकरण तथा सतत विकास की प्राथमिकताएँ दो-तिहाई आबादी के विकास संबंधी जरूरतों के मुताबिक बना नहीं दी जातीं।

प्रधानमंत्री

श्री अटल बिहारी वाजपेयी

ताकतवर देश छोटे राष्ट्रों के अपेक्षा आतंकवाद में ज्यादा शामिल रहे हैं।

प्रसिद्ध विद्वान

नोम चोम्स्की

विश्व व्यापार संगठन को राष्ट्रीय सरकारों और संसदों के अधिकार क्षेत्र में बिल्कुल हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

वाणिज्य मंत्री

मुरासोली मारन

विश्व व्यापार में केवल ०.७ फीसदी हिस्से के बावजूद हमने डब्ल्यू.टी. ओ. पर गहरा असर डाला है।

फिक्की के महासचिव

अमित मित्र

दोहा वार्ता में भारत का कड़ा रुख हमारे लिए चुनौती था।

विश्व व्यापार संगठन के महानिदेशक **माइक मूर** तथा यूरोपीय संघ के व्यापार आयुक्त **पास्कल लेमी**

अमेरिकी प्रतिबंधों ने हमारे लिए उत्प्रेरक का काम किया।

बार्क के निदेशक

बी. भट्टाचार्य

पहली जागरूक पहल के लिए धन्यवाद!

विश्व व्यापार संगठन की चौथी मंत्रिस्तरीय बैठक में भारत सरकार की सफलता को देखने की नजर साफ होनी चाहिए। ताकि कोई भ्रम न रहे, अपने हितों की रक्षा में बाधक भ्रम। चूँकि स्वदेशी जागरण मंच वर्षों से यह अपेक्षा करता रहा कि भारत सरकार कमर कसकर खड़ी हो, अपने पक्ष को जोरदार ढंग से रखे, अपने सहयोग में उन सभी विकासशील देशों को ला खड़ा करे जो विकसित देशों से पिटते जा रहे हैं। राष्ट्रऋषि दत्तोपंत ठेंगड़ी ने प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी से खुले शब्दों में अपेक्षा की थी कि वे आगे आएँ, विकासशील देशों का प्रतिनिधित्व करें। मंच की ओर से लगातार यह भी कहा जाता रहा है कि वर्तमान विश्व व्यापार संगठन में हमारे हितों की अनदेखी की जाती रही है, हमें इससे बाहर निकल आना चाहिए, दोहा बैठक के संबंध में भी मंच ने यही कहा था कि यदि दबाव देकर हमारे पक्ष को नकारने की कोशिश होती है तो हमें इस बैठक का बहिष्कार कर देना चाहिए। मंच अपनी अपेक्षाओं के अनुरूप कुछ कार्य होते देख निश्चित आशान्वित हुआ है। पर, क्या इतना ही पर्याप्त है? क्या भारत और अन्य विकासशील देश अपना उचित अधिकार हासिल कर पाए हैं? विश्व व्यापार संगठन में पूर्व निर्धारित कार्य अधूरे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की छप्पनवीं महासभा में बोलते हुए प्रधानमंत्री के इस कथन में – **'हमने अपना ठोस तर्क रखा है कि विश्व व्यापार संगठन के एजेण्डा का और विस्तार करने से पहले कार्यान्वयन संबंधी मुद्दों का पहले समाधान कर लेना चाहिए। हमारी जनता उस स्थिति में पोस्ट डेट चेक को स्वीकार करने की इच्छुक नहीं है जब उसके पास पहले से ही बाउँस्ड चेक पड़ा हो'**, भारत की जनता की पक्षधरता पूरी सबलता से अभिव्यक्त हुई। इसीलिए यह वाक्य भी दोहा पहुँचे स्वयंसेवी संगठनों का नारा बन गया और देशवासियों के मन में भी उतर गया। प्रधानमंत्री वाजपेयी के अभिभाषण का लगभग आधा हिस्सा आर्थिक पक्ष पर था। सामरिक आतंकवाद के विरोध के साथ–साथ उन्होंने आर्थिक आतंक पर भी अपना विरोध जताया। निश्चय ही भारतवासी उनसे आर्थिक मोर्चे पर कमजोर करने वाले संदर्भों को दूर करने की आशा रखेंगे। इस कार्य में सरकार आगे आती है तो जनता उसके साथ होगी।

विकसित देश अपने आर्थिक मोर्चों पर बड़ी कठोरता से तत्पर हैं। वे कमजोर पहल रखने वाले देश को बेरहमी से लूट लेने को तैयार हैं। अमेरिका से जब १ जनवरी २००५ तक सीमित भारतीय वस्त्र निर्यात के कोटा की अवधि कम करने की माँग की गई, तब अमेरिका भारत पर आर्थिक प्रतिबंध लगाने तक की धमकी दे बैठा। क्या भारत में मात्रात्मक प्रतिबंध हटाकर दो–दो वर्ष पुराने मांस आदि निषिध खाद्य पदार्थों तक को आयात की छूट देते समय देश की सांस्कृतिक अस्मिता और स्वास्थ्य की रक्षा के लिए कोई तत्परता दिखाई गई थी? मात्रात्मक प्रतिबंध की अवधि को निर्धारित समय से पहले हटाने के लिए बाध्य होना पड़ा, यहाँ तक कि जनता की सार्थक प्रतिक्रिया और विरोध को बेमतलब की डर कहकर उसे दूर करने की कोशिश की गई थी। लेकिन, अब ऐसा समय आ चुका है कि हर आर्थिक मोर्चे पर देश हित का पक्ष थोड़ा भी कमजोर नहीं होना चाहिए। कहना आवश्यक है कि वर्तमान वैश्विक आर्थिक मंदी दूर करने के लिए विकसित देश विकासशील देशों की छोटी–छोटी आर्थिक अस्मिताओं को निगल जाने की ताक में हैं। इसके लिए विश्व बैंक जैसी संस्थाओं की रणनीतियों पर नजर रखने की जरूरत है। साथ ही विकासशील देशों के प्रतिनिधित्व में भारत की भूमिका और मजबूत होती जानी चाहिए ताकि यूरोपीय संघ के साथ हुई व्यापारिक शिखर बैठक से विकसित देशों के प्रति कोई झुकाव परिलक्षित न हो। हालाँकि इस बैठक के समापन पर बोलते हुए प्रधानमंत्री ने वैश्विक आर्थिक मंदी के लिए विकसित और विकासशील देशों के बीच गहराती हुई आर्थिक खाई को ही जिम्मेदार ठहराया, आर्थिक समरूपता को आवश्यक बताया। इस आदर्शोन्मुख दृष्टि में वैश्वीकरण का सार्थक पक्ष है, लेकिन इस शील का अनुसरण आक्रांता प्रवृति का कोई भी देश नहीं कर सकता। इसलिए क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो – की नीति को अपने आदर्श का मूलाधार बनाना आवश्यक है।

यह नहीं भूलना चाहिए कि देश के बाजार और उत्पादन संबंधी हर अंगों पर चोट के निशान उभर रहे हैं। वस्त्र उद्योग दम तोड़ रहे हैं कपड़े के निर्यात में चालीस लाख डॉलर की कमी आ चुकी है। शत–प्रतिशत विदेशी पूँजी निवेश का दानव हमारे उद्योगों को निगलने और बेरोजगारी उत्पन्न करने में लगा है।

इसलिए यह समय ठोस धरातल पर आने वाले प्रतिफलों के आधार पर सफलता की सुखानुभूति करने का ही है। ऐसे प्रतिफलों के लिए निर्णायक कदम उठाना होगा। जिस उद्देश्य के लिए विश्व व्यापार संगठन बना है, उस उद्देश्य में हमारा हित हो, यह जरूरी नहीं। उसमें अनुकूलता नहीं मिलने पर विकल्प खोजने की तत्परता भी होनी ही चाहिए। संभव है, यह तत्परता मुश्किलों के आसान बनने में भी मदद करे।

Scanned with OKEN Scanner

अग्रलेख

कितनी सफल रही दोहा में भारत की भूमिका?

■ पी.डी कार्त्तिकेय एवं धी. द्विवेदी

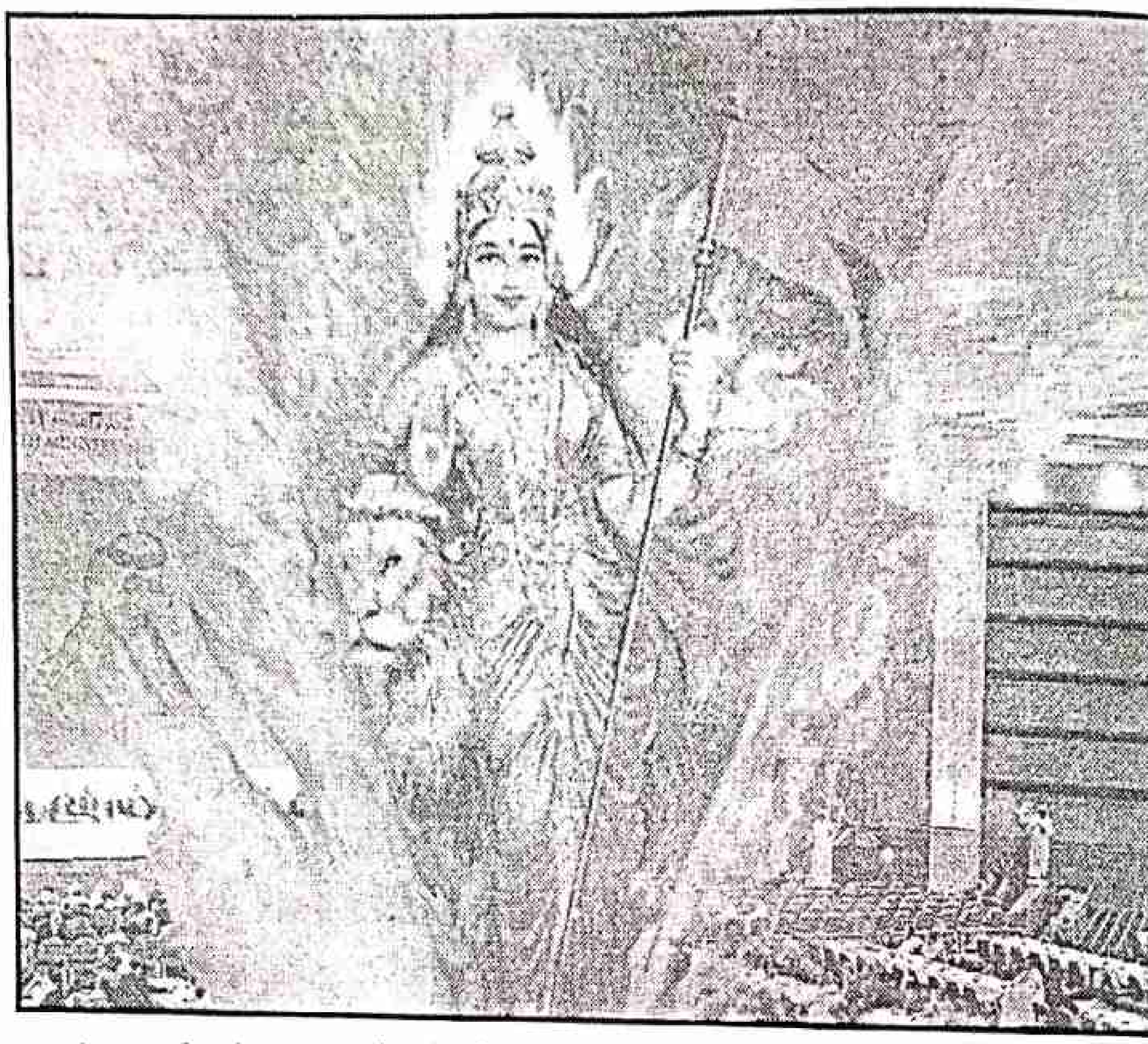

विश्व व्यापार संगठन के दोहा में हुए द्विवार्षिक मंत्रिस्तरीय सम्मेलन के परिणाम यह दर्शाते हैं कि पहली बार किसी विकासशील देश की कोशिशों के फलस्वरूप विश्व व्यापार संगठन (वि.व्या.सं.) अपने स्थापना के गुप्त मूल उद्देश्य को प्राप्त करने में विफल रहा। इसकी स्थापना द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिका में आयी भारी मंदी से निपटने के लिए १९४८ में अमेरिकी पहल पर की गयी थी। उस समय अमेरिका में औद्योगिक उत्पादन उसकी अपनी घरेलू माँग से ज्यादा था जिसके लिए बाजार उपलब्ध कराने हेतु वहाँ के अर्थशास्त्रियों ने वि.व्या.सं. की परिकल्पना की। १९४८ में इसकी स्थापना के समय इसे वि.व्या.सं. का नाम नहीं दिया गया। इसे 'व्यापार एवं तटकर पर सामान्य समझौता' (गैट) कहा गया। इसने अपनी स्थापना के उद्देश्यों को पूरा किया और द्वितीय विश्व युद्ध के बाद स्वतंत्र हुए बहुत से देश अमेरिकी आर्थिक उपनिवेश बने जहाँ अमेरिकी माल की खपत पर्याप्त मात्रा में होने लगी। १९८०-८२ तक आते-आते औद्योगिक क्षेत्र में ही नहीं बल्कि कृषि क्षेत्र में भी अमेरिका एवं यूरोपीय देशों में घरेलू माँग की अपेक्षा बहुत ज्यादा उत्पादन होने लगा। इस उत्पादन को विकासशील देशों में खपाने के लिए उन्होंने मिलकर विकासशील देशों के विरुद्ध षड्यंत्र किया और उरूग्वे दौर (१९८६-९४) की वार्त्ताएँ शुरू हुईं। इन वार्ताओं में पहले केवल कृषि को ही शामिल किया गया था। फिर बौद्धिक संपदा अधिकारों को भी शामिल किया गया। १९९४ तक गैट कृषि क्षेत्र में अप्रभावी था और विकासशील देश अपने-अपने देशों में विभिन्न तरह के रोक-टोक के प्रभावी कानूनों को बनाकर अपने आप को सुरक्षित रखने में सफल रहे थे। १९९४ में उन पर दबाव डाल कर उनसे वि.व्या.सं. के मसौदे को स्वीकार कराया गया। इस पूरे खेल में भारत की स्थिति अजीब रही। १९८६ में शुरू हुऐ उरूग्वे दौर की वार्ताओं को भारत ने १९८९ तक विकसित देशों की आर्थिक उपनिवेशवाद की चाल मानकर खारिज किया। लेकिन १९८९ के बाद देश की आर्थिक स्थिति में बहुत परिवर्तन हुआ। सोवियत संघ बिखर गया और पूरी दुनिया अमेरिका पर संकेन्द्रित हो गयी। अर्थव्यवस्था की खस्ता हालत को सुधारने के लिए हमारे देश के अर्थशास्त्रियों ने तत्कालीन वित्तमंत्री श्री मनमोहन सिंह के साथ मिलकर जो

बनायी वह विदेशी सहायता (ऋण) आधार पर खड़ी की गयी। देश को विदेशी सहायता मिलेगी इसके र पर हमारे विकास कार्यक्रमों को तय गया। स्वदेशी संसाधनों की उपेक्षा की इस हालत में भारत को कर्ज की यकता थी ताकि उसके विकास क्रमों में रुकावट न आ सके। कर्ज देने संस्थाएँ विश्व बैंक हो या मुद्राकोष कोई अन्य सभी अमेरिकी हितों की पक हैं। कर्ज की आवश्यकता वाली यों (चार्वाक दर्शन – ऋणं कृत्वा धृतं) ने अमेरिका को मौका दे दिया। रिका ने विश्व बैंक के माध्यम से कहा विकास चाहिए तो ऋण लो और ऋण ए तो उरूग्वे दौर को स्वीकार करो। वे दौर के समय गैट के महासचिव केल' थे। इनके नाम पर उरूग्वे दौर के दे को 'डंकेल प्रस्ताव' कहा गया। व्यापी विरोध के बावजूद अपनी विदेश त नीति से हाथ बँधे होने के कारण कालीन प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव को केल प्रस्तावों को स्वीकार करना पड़ा। त इसमें अपनी राष्ट्रीय हितों की पूरी ह संरक्षित करने में सक्षम नहीं हो पाया। सका मुख्य कारण उदारीकरण आधारित वदेशी विरोधी नीतियाँ थीं। एक बार इन स्तावों को स्वीकार कर लेने के बाद हम मेरिकी पंजे में फँस गए और एक पंजा दिन-प्रति-दिन कसता चला जा रहा है। रूग्वे दौर (१९८६-९४) की वार्ताओं जो समझौते हुये उनमें व्यापार, कृषि और बौद्धिक संपदा अधिकार शामिल थे। इस समझौते के आधार पर आज के विश्व व्यापार संगठन का आधिकारिक जन्म १ जनवरी १९९५ को हुआ। इस संगठन के जन्म की आधिकारिक घोषणा के साथ ही पूरी दुनिया पर विकसित देशों के आर्थिक उपनिवेश बनने का खतरा पुनः एक नए एवं अत्यंत विकराल रूप सामने आ गया।

विश्व व्यापार संगठन के समझौते में यह प्रावधान है कि हर दो वर्ष पर इसके सदस्य राष्ट्रों का मंत्रिस्तरीय सम्मेलन आयोजित किया जाएगा। यह सम्मेलन विश्व व्यापार संगठन की सर्वोच्च परिषद् है। विश्व व्यापार संगठन के सभी महत्वपूर्ण निर्णयों पर मुहर लगाने की जिम्मेवारी इसी सम्मेलन की होती है। इसके स्वीकार कर लेने के बाद वे निर्णय कानून बन जाते हैं जिन्हें सभी सदस्य राष्ट्रों को मान्यता देनी पड़ती है। इसमें सबसे पहले सम्मेलन के घोषणा-पत्र का मसौदा (डीएमडी) तैयार किया जाता है जिस पर सम्मेलन में चर्चा होती है और फिर उस पर निर्णय लिया जाता है। इस बार के दोहा सम्मेलन में भी विकसित देशों ने विकासशील देशों के सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को नष्ट कर उसे अपने आर्थिक उपनिवेश बनाने की बहुत कोशिशें की थीं। जिसके तहत विश्व व्यापार संगठन के अधिकार क्षेत्र को बढ़ाकर निवेश, श्रम एवं पर्यावरण, सरकारी खरीद, प्रतियोगिता नीतियाँ इत्यादि को भी इसमें शामिल करने की कोशिशें की गयीं। साथ ही यह भी कहा गया कि यह सभी देशों की सर्वमान्य है। अर्थात् विकसित देशों के एजेण्ट के रूप में कार्य कर रहे विश्व व्यापार संगठन के महासचिव माइक मूर द्वारा प्रस्तुत यह मसौदा सभी विकासशील देश अपनी संप्रभुता को भूल कर स्वीकार कर लें। अपने किसानों, उद्यमियों एवं संसाधनों की बलि देकर विकसित देशों के लाभ में बढ़ोत्तरी करें। यह पूरा डी.एम.डी. विकासशील देशों के संप्रभु अस्तित्व को ही नकार रहा है। इसके माध्यम से विश्व व्यापार संगठन को एक वैश्विक सरकार का रूप दिए जाने की कोशिश की गयी थी जिसकी नकेल विकसित राष्ट्रों के हाथ होती। लेकिन लगता है कि विकसित राष्ट्र अपना अतीत भूल गए हैं। प्रथम विश्व युद्ध १९१४ से १९१८ तक हुआ था और दूसरा विश्व युद्ध १९३६ से १९४५ तक चला था। इन दोनों युद्धों का मूल कारण पश्चिम का भोगवादी, मशीनआधारित विकास था। यह डी.एम.डी. इस दोहा सम्मेलन में मान्य हो जाने पर एक और विश्वयुद्ध की संभावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता है। प्रथम विश्व युद्ध में पहले से स्थापित आर्थिक साम्राज्य ब्रिटेन को नए आर्थिक ताकत बने जर्मनी की चुनौती थी। जर्मनी को भी अपने उत्पादनों के लिए बाजार की

Scanned with OKEN Scanner

अमेरिका और यूरोपीय संघ विकासशील देशों के शोषण के लिए हाथ तो मिलाते है लेकिन साथ ही जब यूरोप अमेरिकी मालों पर शुल्क या प्रतिबंध लगाता है तो अमेरिका उसे अपने ऊपर आण्विक बम का प्रहार मानता है। ऐसी स्थिति में यह केवल कोरी कल्पना नहीं है कि एक बार सभी विकासशील राष्ट्रों को शोषण मिलकर पूरा कर लेने के बाद जब पूरी दुनिया पर एकाधिकार का मुद्दा सामने आएगा तो दोनों अपने महाविनाशक हथियारों को एक दूसरे की तरफ मोड़ देंगे।

आवश्यकता थी और इसी आर्थिक संघर्ष ने विकराल सामरिक संघर्ष का रूप ले लिया। ठीक यही कहानी इन हालातों में भी दोहराई जा सकती थी। अमेरिका और यूरोपीय संघ विकासशील देशों के शोषण के लिए हाथ तो मिलाते है लेकिन साथ ही जब यूरोप अमेरिकी मालों पर शुल्क या प्रतिबंध लगाता है तो अमेरिका उसे अपने ऊपर आण्विक बम का प्रहार मानता है। ऐसी स्थिति में यह केवल कोरी कल्पना नहीं है कि एक बार सभी विकासशील राष्ट्रों को शोषण मिलकर पूरा कर लेने के बाद जब पूरी दुनिया पर एकाधिकार का मुद्दा सामने आएगा तो दोनों अपने महाविनाशक हथियारों को एक दूसरे की तरफ मोड़ देंगे। भावी युद्ध और पूर्व में हुए युद्धों में अंतर इतना ही हो सकता था कि इन महाविनाशक अस्त्रों का उपयोग वे एक दूसरे के आर्थिक गुलामों पर करते। चाहे चाकू पर तरबूज गिरे या तरबूज पर चाकू हर हाल में कटना तरबूज को ही है। यही इस डी०एम०डी० के मान्य होने की स्थिति विकासशील राष्ट्रों की जनता तरबूज बन जाती। अपने संप्रभुता पर हुए इस आक्रमण का विरोध होना अत्यावश्यक था। जिसके कारण विश्व व्यापार संगठन के एकसूत्री लक्ष्य 'सभी (विकसित राष्ट्र) सुखी हों' को इस बार भारत के नेतृत्व में विकासशील राष्ट्रों ने चुनौती दी। चुनौती के समय तो सभी राष्ट्र एक साथ थे भारत के नेतृत्व में, लेकिन समय के साथ (९ से १९ दिनांक तक) भारत अंततः इस आर्थिक समर में अकेला खड़ा था। जूझ रहा था और अपनी विजय पताका फहरायी। भारत ने अकेले लड़कर सभी राष्ट्रों की संप्रभुता की रक्षा की क्योंकि अगर ये सभी मुद्दे लागू हो जाते तो भी देश या सरकार कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। सरकार का काम आर्थिक क्षेत्र में केवल कार्यपालक का रहा जाता। आर्थिक विधायिका और आर्थिक न्यायपालिका पूर्णतः विकसित देशों के हाथ में होती। कहने को तो विश्व व्यापार संगठन में भी सारे काम जनतांत्रिक विधि से होते हैं लेकिन सीधे-सीधे देखने पर भी यह बात सामने आती है कि विश्व व्यापार संगठन संख्या की जगह शक्ति से संचालित होता है।

विश्व व्यापार संगठन में वार्ता इस लिए होती है कि सभी मुद्दों पर आम राय बनाकर काम किया जाए। इस बार सम्मेलन के पहले जो घोषणा-पत्र का मसौदा बना उसमें ऐसा था कि ये मसौदा सभी को मान्य है। फिर भारत के विरोध को देखते हुए इसमें परिवर्त्तन किया गया। परिवर्त्तन के बाद भी वह सौदा विकसित देशों के हितों को ही तुष्ट करता था। इसमें प्रमुख मुद्दा यह रखा गया कि १९९६ के सिंगापुर मंत्रिस्तरीय सम्मेलन के मुद्दों के ऊपर निर्णय लिये जाएँ। ये मुद्दे थे सरकारी खरीद, हर देश की सरकार अपने-अपने देश की आवश्यकता के अनुसार अपने पसंद की वस्तुएँ अपने लिए लाभकारी स्थानों से खरीदती है इस पर कोई रोक-टोक नहीं है क्योंकि यह उनके संप्रभुता से सीधे जुड़ा है। विकसित देशों का यह मानना है कि इसमें पारदर्शिता होनी चाहिए ताकि वे सीधे-सीधे इस सरकारी खरीद को प्रभावित कर सके। यह नीति औपनिवेशिक नीतियों में से एक है। जब भारत पर ब्रिटेन का शासन था तो भारत की कार्यकारी सरकार द्वारा की जाने वाली खरीद पर ब्रिटिश सरकार की अनुमति आवश्यक थी। ठीक यही व्यवस्था विकसित देश पुनः विकासशील देशों पर थोपना चाहते हैं। इसके लिए पहला कदम उन्होंने १९९६ में ही सिंगापुर में इसे कार्यसूची में डलवाकर कर दिया था। दूसरा मुद्दा था निवेश एवं प्रतिस्पर्धा का। निवेश एवं प्रतिस्पर्धा के बारे में विकसित राष्ट्रों के प्रतिनिधि माइक मूर द्वारा तैयार घोषणा-पत्र के प्रारूप में कहा गया था कि हम इस मुद्दे पर बात करने के लिए तैयार हैं। इसमें विदेशी प्रत्यक्ष निवेशकों तथा घरेलू उद्योगों दोनों को समान अधिकार देने की बात की गयी थी। अगर हम इसे भारत एवं अमेरिका के परिपेक्ष्य में देखें तो इसके तात्कालिक एवं दीर्घकालिक प्रभाव का अनुमान आसानी से लगा सकते हैं। भारत का सबसे बड़े औद्योगिक घरानों रिलायंस तथा टाटा की तुलना जनरल मोटर्स, जनरल इलेक्ट्रिकल या अन्य बहुराष्ट्रीय निगमों से की जाए तो भारतीय कंपनियाँ उनके सामने वही औकात रखती है जो हाथी के सामने चींटी की। आज भारत में कारोबार करने को आतुर खुदरा बिक्री केन्द्रों वाले वालमार्ट स्टोर्स की कुल परिसम्पत्तियाँ टाटा की अपेक्षा कई गुनी ज्यादा है। अगर इन्हें भारत में खुदरा व्यापारियों के समान अधिकार दे दिए गए तो भारत के लगभग १ करोड़ चालिस लाख खुदरा विक्रेता कहाँ जाएँगे – यह चिंतन करने की बात होगी। अन्ततः उनमें से बहुत एक और तालिबान के उदय का कारण बन सकते हैं। लेकिन विकसित देश घरेलू एवं विदेशियों दोनों का समान अधिकर देने की बात करते हैं। यह योजना भारत के संविधान की एक मूल भावना 'प्रतियोगिता बराबर के लोगों के बीच होगी' कोई भी अमान्य करती है। इसके साथ नए दौर की वार्ताओं के प्रति विकसित राष्ट्रों की ललक इसलिए भी थी

Scanned with OKEN Scanner

न्हें इससे लाभ ही लाभ था। विकसित इस सम्मेलन में यह चाहते थे कि सशील देश अपने उद्योगों को संरक्षण बंद कर उन्हें प्रतियोगिता में उतरने दे बड़ी मछलियाँ इन लार्वाओं को खा और विकासशील देशों का व्यापार कब्जे में हो। साथ ही पूँजी निवेश के विकसित देश अपनी इच्छा को री बनाना चाहते थे ताकि पूँजी निवेश सित देश की आवश्यकताओं के पूर्ति लिए न होकर उसके संसाधनों के दोहन लिए हो और उन पर कोई रोकटोक न उनका मुद्दा था श्रम एवं पर्यावरण का। ने श्रम एवं पर्यावरण को भी वार्ता के दोहा दौर में व्यापार के साथ जोड़ने की शिशें की थीं। इसमें विकसित राष्ट्रों का ना था कि पूरी दुनिया में एक समान मानक लागू किए जाएँ। बच्चों को श्रम भी कार्यों से अलग रखा जाए। श्रम की त आवाजाही नहीं होगी। ये सभी मुद्दे तराष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यकलापों में शामिल रहते हैं। लेकिन वहाँ इन्हें पार से नहीं जोड़ा गया है। इन सभी मुद्दों वि.व्या.सं. में शामिल कराने की पीछे मंशा इसे व्यापार के साथ जोड़कर कासशील देशों पर दबाव बनाने की थी। गर यह मुद्दा इस बार कार्यसूची में आ ता तो विकासशील देशों के निर्यात पर म संबंधी पाबंदियाँ लगाकर विकसित देश न्हें और कुन्द कर देते। विकसित देशों था विकासशील देशों की प्रति व्यक्ति औसत आय में लगभग १०० गुने का फर्क है। विकसित राष्ट्रों के एक बहुराष्ट्रीय कंपनियों का कुल बजट कई विकासशील राष्ट्रों के बजट से ज्यादा रहता है। ऐसी हालत में विकासशील राष्ट्रों पर भी विकसित देशों के समान श्रम मानक लागू कर उनकी अर्थव्यवस्था को चौपट करना विकसित राष्ट्रों का एकमात्र लक्ष्य है। एक बार घरेलू अर्थव्यवस्था नष्ट हुयी तो फिर आप विकसित राष्ट्रों के पूर्ण गुलाम बन जाएँगे। दास प्रथा तो पूरे विश्व में समाप्त हो चुकी है लेकिन विकसित देश व्यक्ति को दास

एक तरफ तो विकसित देश अपने लाभ वाले क्षेत्रों तकनीक तथा पूँजी के लिए विकासशील देशों की व्यवस्था को पूरी तरह खुला रखना चाहते थे वहीं वे श्रम के आदान-प्रदान की खुली व्यवस्था के विरोधी हैं। क्योंकि इससे उनके घरेलू श्रमिकों पर असर पड़ सकता है। विकासशील देशों के सस्ते श्रमिक उनके लिए घातक हैं क्योंकि सस्ता श्रम, सस्ते उत्पादन में सहायक है। सस्ता उत्पाद उनके महँगे उत्पादों के लिए घातक है। इसलिए वे श्रम के आदान-प्रदान का विरोध करते हैं।

बनाने के स्थान पर पूरे देश को दास बनाने का प्रयास कर रहे हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक समान श्रम मानक लागू करने पर लघु एवं मध्यम श्रेणी के उद्योगों तथा प्रमुखतः कृषि आधारित अर्थव्यवस्था वाले विकासशील देशों का हश्र क्या हो गया। इसका अनुमान लगना बहुत आसान है। एक तरफ तो विकसित देश अपने लाभ वाले क्षेत्रों तकनीक तथा पूँजी के लिए विकासशील देशों की व्यवस्था को पूरी तरह खुला रखना चाहते थे वहीं वे श्रम के आदान-प्रदान की खुली व्यवस्था के विरोधी हैं। क्योंकि इससे उनके घरेलू श्रमिकों पर असर पड़ सकता है। विकासशील देशों के सस्ते श्रमिक उनके लिए घातक हैं क्योंकि सस्ता श्रम, सस्ते उत्पादन में सहायक है। सस्ता उत्पाद उनके महँगे उत्पादों के लिए घातक है। इसलिए वे श्रम के आदान-प्रदान का विरोध करते हैं। वे कह रहे थे कि यदि विकासशील राष्ट्र विकसित राष्ट्रों के समान श्रमिकों को अधिकार नहीं देंगे तो वे उनके उत्पादन को अपने यहाँ नहीं आने देंगे। विकसित और विकासशील राष्ट्रों के अर्थव्यवस्थाओं के बीच की खाई इतनी चौड़ी है कि एक समान श्रम अधिकार देना संभव नहीं है तो विकासशील राष्ट्रों के उत्पाद बेकार हो जाएँगे और उनकी अर्थव्यवस्था नष्ट होगी। इसके साथ ही इस बार वार्ता में पर्यावरण को भी श्रम के साथ जोड़ने की कोशिशें विकसित राष्ट्रों ने की थी। विशेषकर इस पर ज्यादा जोर यूरोप का था। इसमें कुछ विशेष मानक रखे गए थे। इन मानकों को मानने वाले देशों से ही उनके उत्पादों का आयात किया जाएगा। ये मानक मूलतः कृषि उत्पादों पर लागू किए जाने थे जिससे विकासशील राष्ट्रों की हानि होगी। उनका कहना है कि विकसित राष्ट्र उन कृषि उत्पादों का आयात नहीं करेंगे जिनमें रासायनिक पेस्टिसाइड का उपयोग हुआ होगा। रासायनिक खादों का उपयोग करने वाले किसानों का उत्पाद निर्यात नहीं हो सकता है। विकसित देश केवल उन्हीं उत्पादों का आयात करेंगे जो पूर्णतः पर्यावरण मित्र है और यह मानक वे खुद स्थापित करेंगे। वे पूरे दुनिया में एक ही तरह के पर्यावरण मानक लागू करना चाहते है। जबकि संसार के हर क्षेत्र की स्थिति अलग-अलग है। सबके लिए एक समान मानक लागू कर वे अपने शोषण तंत्र को और मजबूत कर सकते हैं। एक तरफ तो अमेरिका जैसे देश है जो मराकेश समझौते के पालन के प्रति कटिबद्ध नहीं है वहीं सभी विकासशील देशों के उत्पादन को पर्यावरण के साथ जोड़ने के प्रयास किए गए हैं। इसमें विकसित देशों को कुछ हद तक सफलता भी मिली है। इन मुद्दे का विरोध भारत ने घोषणा-पत्र का मसौदा जारी होने के बाद ही शुरू कर दिया था। वाणिज्य मंत्री ने इसका विरोध करते हुए वि.व्या.सं. को एक आवश्यक विपत्ति कहा।

संयुक्त राष्ट्र संघ के ५६वें अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए भारतीय प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने भी इस मसौदे का विरोध किया। उस समय दोहा में वार्ता

प्रधानमंत्री ने अपने सम्बोधन में कहा ''.....विश्व व्यापार संगठन के मुद्दों पर विचार करने के लिए दोहा में जारी मंत्रियों के सम्मेलन में इसके निराशाजनक आँकड़ों पर चर्चा करना उचित रहेगा जबकि हम वैश्वीकरण और सतत विकास के लिए नए प्रयास कर रहे हैं, हमें यह समझ लेना चाहिए कि उनके लिए राजनीतिक समर्थन गरीबी पर पड़ने वाले उनके प्रभावों के आधार पर ही हासिल किया जा सकेगा। उरूग्वे सम्मेलन ने अधिकांश विकासशील देशों के आर्थिक विकास की दिशा में कुछ नहीं किया....

चल रही थी। प्रधानमंत्री के इस विरोध का असर दोहा पर भी पड़ा और अंततः भारत को कुछ हद तक अपनी बातें मनवाने में सफलता मिली।

प्रधानमंत्री ने अपने सम्बोधन में कहा ''.....विश्व व्यापार संगठन के मुद्दों पर विचार करने के लिए दोहा में जारी मंत्रियों के सम्मेलन में इसके निराशाजनक आँकड़ों पर चर्चा करना उचित रहेगा जबकि हम वैश्वीकरण और सतत विकास के लिए नए प्रयास कर रहे हैं, हमें यह समझ लेना चाहिए कि उनके लिए राजनीतिक समर्थन गरीबी पर पड़ने वाले उनके प्रभावों के आधार पर ही हासिल किया जा सकेगा। उरूग्वे सम्मेलन ने अधिकांश विकासशील देशों के आर्थिक विकास की दिशा में कुछ नहीं किया बल्कि गरीबी के स्तर तथा आर्थिक खाई में और भी वृद्धि हुई है। वैश्वीकरण के कारण विकासशील देशों की गरीबी दूर करने के लिए अपने सार्वजनिक संसाधनों को काम में लाने के लिए मजबूर होना पड़ा है। यही कारण है विकासशील देशों में वैश्वीकरण को न के बराबर जन-समर्थन मिला है। इसलिए हमने अपना ठोस तर्क रखा है कि वि.व्या.सं. के एजेण्डा का और विस्तार करने से पहले कार्यान्वयन संबंधी मुद्दों का पहले समाधान कर लेना चाहिए। हमारी जनता उस स्थिति में पोस्ट डेटेड चेक स्वीकार करने की इच्छुक नहीं है जब उसके पास पहले से ही बाउंसड चेक पड़ा हो – इसी तरह सतत विकास की दिशा में की गई पहल से निराशा ही हाथ लगती है। विकासशील देश अपने सर्वोत्तम जैव विविधता संसाधनों तथा परंपरागत ज्ञान का उचित मूल्य ही प्राप्त नहीं कर सके हैं .... विकसित देशों की मंद अर्थव्यवस्था में तब तक तेजी लाना संभव नहीं है जबतक वैश्वीकरण तथा सतत विकास की प्राथमिकताएँ दो-तिहाई आबादी के विकास संबंधी जरूरतों के मुताबिक बना नहीं दी जातीं.......।''

मुद्दे	बहस	परिणाम	निष्कर्ष
पेटेंट और दवाईयाँ	पेटेंट और ऊँची कीमत वाली दवाइयां सस्ते में आसानी से उपलब्ध हों।	स्वास्थ्य संबंधी विपत्ति, महामारी वगैरह के दौरान पेटेंट दवा के एकाधिकार को तोड़ने का अधिकार देशों को मिला।	लाभ
एंटी-डंपिंग	अमेरिका में कड़े और बेतुके एंटी-डंपिंग कानूनों में ढील दी जाए।	एंडी-डंपिंग प्रावधानों को लागू करने में कड़े अनुशासन का आश्वासन मगर परिवर्तन की गारंटी नहीं।	लाभ
कपड़ा	अमेरिका में कपड़ा और सिलेसिलाए वस्त्र के निर्यात पर लागू कोटा व्यवस्था जल्दी हटे।	अमेरिका ने कोटा घटाने की तिथि जनवरी 2005 से पहले करने से इनकार किया, दबाव बढ़ाने पर अन्य प्रतिबंध लगाने की धमकी।	हानि
कृषि	यूरोपीय संघ अपने किसानों को दी जाने वाली भारी निर्यात सब्सिडी को घटाए।	यूरोपीय संघ भविष्य में चरणबद्ध सब्सिडी घटाने पर बात करने को तैयार, भारत के गुणवत्ता वाले कृषि उपज के निर्यात की उम्मीद बढ़ी।	लाभ
पर्यावरण	व्यापार के साथ पर्यावरण के मानदंडों को जोड़ा जाए या नहीं।	पर्यावरण पर 2003 में सीमित वार्ता पर रज़ामंदी, निर्यात के उत्पाद पर पर्यावरण संबंधी मानदंडों पर भी चर्चा होगी।	हानि
निवेश/प्रतिस्पर्धा	सभी देशों में निवेश और प्रतिस्पर्धा के समान नियम हों।	इस मुद्दे को भारत टालने में सफल रहा।	लाभ
सरकारी खरीद	सभी देशों में आवश्यक वस्तुओं की सरकारी खरीद खुले अंतरराष्ट्रीय बाजार से हो।	इस मुद्दे को भारत टालने में सफल रहा।	लाभ

Scanned with OKEN Scanner

ट्रिप्स पर वार्ता की शुरूआत नकली उत्पादों से निपटने के प्रस्ताव के रूप में हुई थी। जिसने अब इतना व्यापक रूप ग्रहण कर लिया है और अब तो आशंका यह जताई जा रही है कि इतने कड़े ट्रिप्स प्रावधानों के कारण नकली उत्पादों की समस्या कहीं और न बढ़ जाए . . . भारत ने इस वार्ता में अमेरिका द्वारा कपड़े के आयात में कोटा व्यवस्था लागू रखने पर भी आपत्ति की। पर उसे कोई लाभ नहीं मिला। अमेरिका ने पहले से तय समय सीमा १ जनवरी २००५ से पहले कोटा व्यवस्था हटाने से इनकार कर दिया।

भारतीय प्रधानमंत्री के इस वक्तव्य ने राष्ट्रीय हितों को वैश्विक स्तर पर क्षित किया है।

भारत वि.व्या.सं. में नए मुद्दों पर ौत का शुरू से ही कट्टर विरोधी था। कें ये सभी मुद्दे देश की घरेलू नीतियों बंधित हैं और इन पर बहुराष्ट्रीय वार्ता इ ही नहीं है।

भारत ने इस पूरे मसौदे का विरोध ग और इन मुद्दे पर विकासशील देशों दोहा में नेतृत्व किया। भारत के विरोध परिणाम इस वार्ता में देखा गया और सित राष्ट्रों को पीछे हटने पड़ा। इस दौर पर्यावरण के अतिरिक्त अन्य सभी मुद्दों पूर्वगठित कार्य समूहों में चर्चा फिर से ी। इन सभी मुद्दों, सरकारी खरीद, ेश, प्रतिस्पर्धा और श्रम पर कोई निर्णय ं हो पाया और इन पर नए दौर की ाएँ भी शुरू नहीं हो पायीं। यह इस मेलन में भारतीय प्रतिनिधिमंडल की बसे बड़ी सफलता है। इस सफलता के ए भारतीय प्रतिनिधि मंडल बधाई का त्र है। इस सम्मेलन का सबसे बड़ा लाभ रत को यह मिला कि भारत के विचारों ो विकसित और विकासशील देशों ने वीकार किया। वैश्विक व्यापार में केवल ०.७ प्रतिशत का योगदान देने वाला राष्ट्र आज नेतृत्व दे रहा है। आगे भी इसकी संभावना प्रबल है। सरकार भी इस संभावना के प्रति जागरुक है। वैसे भी चीन के वि.व्या.सं. में शामिल होने के बाद यदि भारत नेतृत्व देने के लिए आगे नहीं बढ़ता है तो चीन का रास्ता साफ हो जाएगा और भारत को चीन का नेतृत्व स्वीकार करना होगा।

इस सम्मेलन ने यह साबित किया कि भारत विश्व को नेतृत्व देने और वैश्विक स्तर पर अपनी बात मनवाने में सक्षम है। भारत ने वि.व्या.सं. के राष्ट्रों के संप्रभुता में दखल देने की कोशिशों का विरोध किया।

विश्व व्यापार संगठन के महानिदेशक माइक मूर और यूरोपीय संघ के व्यापार आयुक्त पास्कल लेमी ने स्वीकार किया कि भारत का कड़ा रूख उनके लिए चुनौती बन गया था। भारत का विभिन्न विषयों पर रूख इतना कड़ा था कि अंततः अंतिम घोषणा-पत्र में बदलाव हुआ वरना वार्ता टूटने की नौबत आ गयी थी। दोहा में जुटे सैकड़ों लोगों, दर्जनों एन.जी.ओ. इत्यादि के लिए तो भारत गरीबों के अधिकार के सबसे बड़े पैरवीकार बन गया था। स्थिति यह थी कि १३ नवम्बर की शाम को दोहा के शेरटन होटल का माहौल वार्ता के टूटने की आशंका पैदा कर रहा था। उसी दिन सुबह में जारी हुये वार्ता के घोषणा-पत्र पर कड़ा मोलभाव चल रहा था। इसका निर्माण अमेरिका की संतुष्टि के लिए यूरोपीय संघ के संतुष्टि पर किया गया था जिसमें विकासशील देशों के हितों का शायद ही कहीं ध्यान रखा गया था। इसके एक दिन पहले विकासशील देशों में जनस्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए ट्रिप्स पर घोषणा-पत्र को मान्यता प्रदान कर अमेरिका ने अपनी छवि एक ईमानदार सौदेबाज का बनाई था। लेकिन यूरोपीय संघ अपने निश्चित लक्ष्यों से टस-से-मस नहीं हो रहा था। वह कृषि पर दी जा रही भारी सब्सिडी में कमी करने तथा अंततः उसे समाप्त करने को तैयार नहीं था। विकासशील देश भी भारत के नेतृत्व में सिंगापुर मुद्दों को अपने संप्रभुता पर हमला मानकर स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। सिंगापुर मुद्दों पर किसी भी देश की राष्ट्रीय नीतियों को प्रभावित करते हैं। इसके साथ ही भारत तथा अफ्रीका, कैरिबियन और पैसिफिक (एसीपी) देशों की माँग थी कि विश्व व्यापार संगठन के एक समान व्यापारिक नियमों के अनुसार यूरोपीय संघ द्वारा इन देशों के निर्यातों पर लगाए जा रहे विभिन्न प्रतिबंधों को हटाया जाए। इस स्थिति में सबके हितों के टकरावों के बीच सबको सियेटल में हुए सम्मेलनों की याद आ रही थी जहाँ वार्तायें टूट गयी थीं। लगातार दूसरे सम्मेलन का वैसा ही हश्र होना जो विश्व व्यापार संगठन के लिए एक तगड़ा झटका हो सकता था। इस सबसे बचने के लिए पूरी रात वार्तायें और सौदेबाजियाँ चलती रही। देर रात में भारत एवं ए.सी.पी. देशों की माँग मान ली गयी और यूरोपीय संघ अपने कृषि सब्सिडी में कटौती पर राजी हुआ जिससे समझौता का रास्ता खुला। इन सभी समझौतों में भारत की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण रही। भारत ने अपनी माँगें न माने जाने पर विश्व व्यापार संगठन से वॉक-आऊट करने की भी धमकी दे डाली। भारत के दबावों से परेशान विकसित देशों के भारत को विश्व व्यापार संगठन से निकालने की बातें भी दबी जबान में की। भारत के कोशिशों ने अंततः विश्व व्यापार संगठन के पहले योजना में परिवर्तन कराया और नए मुद्दे कुछ हद तक छोड़ दिए गए। फिर जो भी नया घोषणा-पत्र आया उसमें भी विकासशील देशों के लिए कुछ नहीं था। इसका विरोध होने पर सम्मेलन के अध्यक्ष कतर के उद्योग एवं वाणिज्य मंत्री 'शेख यूसुफ हसन कमाल' इसके उपाय के लिए सामने आए। उन्होंने इस घोषणा-पत्र के साथ एक दो पैरा का स्पष्टीकरण भी जारी किया जिसमें सभी सिंगापुर मुद्दों की

(शेष पृष्ठ ४४ पर)

Scanned with OKEN Scanner

भारत ने पहली बार राष्ट्रवादी दृढ़ता का परिचय दिया

■ अवधेश कुमार

जिन लोगों ने कतर की राजधानी दोहा में सम्पन्न विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) के चौथे मंत्रिस्तरीय सम्मेलन में भारतीय वाणिज्य मंत्री मुरासोली मारन को बोलते सुना उन सबकी छाती गर्व से फूल गई होगी। विपक्षी राजनीतिक दल भले इस मुद्दे पर सरकार की आलोचना कर रहे हैं पर सच्चाई यह है कि इससे पूर्व भारत के द्वारा अपने पक्ष को इतनी दृढ़ता से रखने का साहस किसी ने नहीं दिखाया। यह पहला अवसर था जब आम भारतीय के अंदर अपने देश के महत्व का अहसास हुआ। सच कहा जाए तो इस बार भारत ने अपने पक्ष को साफगोई से संगठन के सामने रखा ही नहीं, अपनी दृढ़ता के कारण अंतिम निर्णय को प्रभावित भी किया। वास्तव में राष्ट्रवादी दृष्टि से देखा जाए और वाणिज्य मंत्री मुरासोली मारन भी भारत को सुर्खियों के आधार पर विचार करें तो मारन का यह कहना बहुत हद तक सही लगेगा कि ''शायद पहली बार हमारे पास व्यापार वार्ता से कुछ सकारात्मक दिखाने की स्थिति बनी है।''

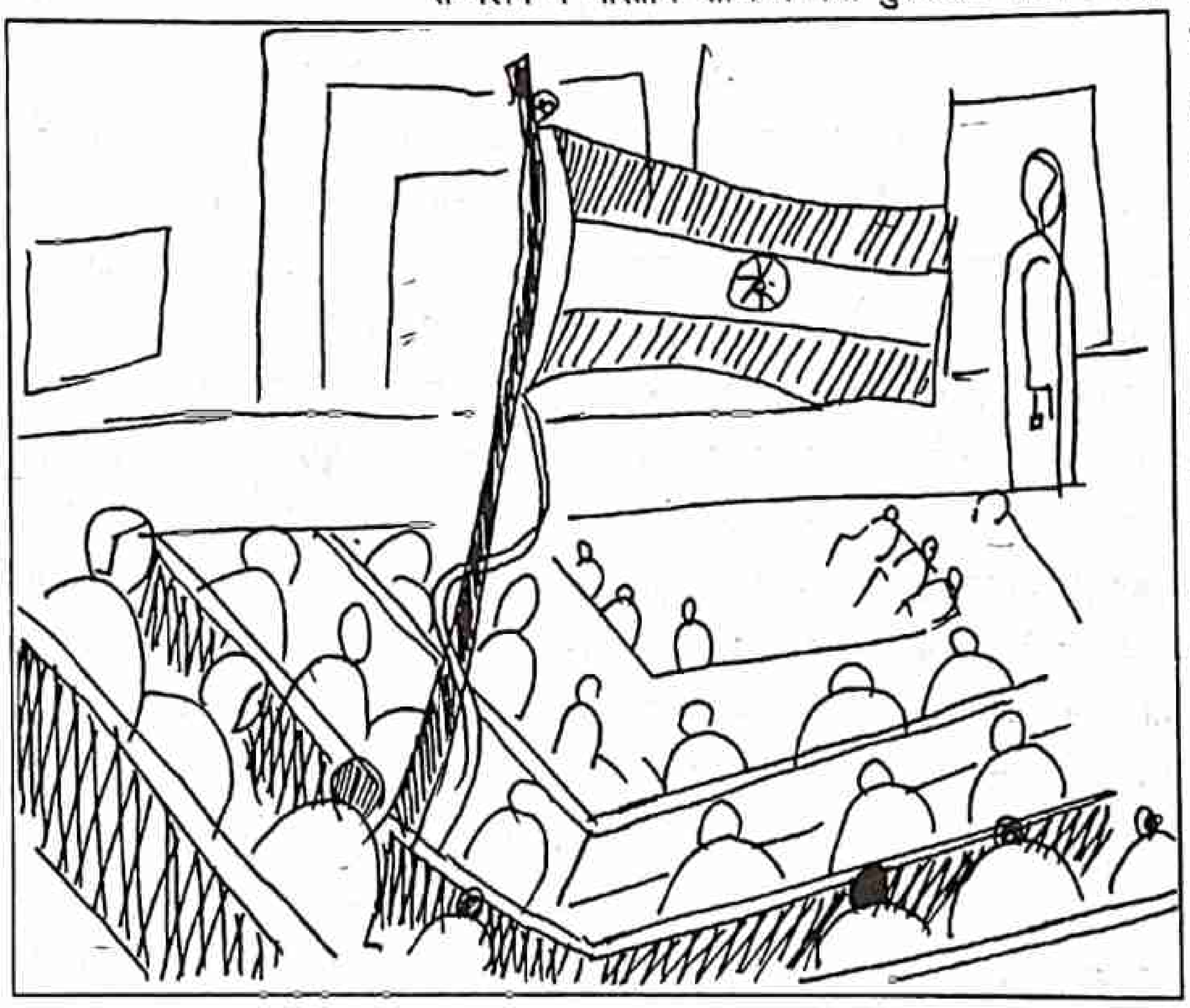

सच्चाई यहीं तक सीमित नहीं है। इसका दूसरा पक्ष यह है कि भारत के कठोरता से अड़े रहने के कारण इसे आगे के लिए टाल दिया गया। इन पर बातचीत की शुरुआत सन् २००३ के अगले मंत्रिस्तरीय सम्मेलन के बाद ही होगी।

अब यह तो संभव नहीं है कि सब कुछ हमारी चाहत के अनुसार ही हो, लेकिन पूरे मामले पर समग्रता से विचार करें तो विरोधियों का यह निष्कर्ष सही नहीं लगेगा कि भारत ने दोहा सम्मेलन में बहुत कुछ खोया है। सबसे पहले प्रमुख विवादास्पद मुद्दों पर नजर दौड़ाएं। निवेश, प्रतिस्पर्धा नीति सरकारी खरीद से पारदर्शिता एवं व्यापार को और सुसाध्य बनाना (ट्रेड फैसिलिटेशन) जैसे चार मुद्दों पर – जिन्हें सिंगापुर मुद्दा भी कहा जाता है – भारत का पक्ष यह था कि ये व्यापार से संबंधित मुद्दे नहीं हैं, इसलिए इन पर बातचीत करने या इन्हें डब्ल्यू.टी.ओ. के एजेंडे में शामिल करने का कोई मतलब नहीं है। भारत के मत में ये देशों की आतंरिक नीतियों से संबंधित मामले हैं एवं इन्हें अलग अलग देशों को अपनी आवश्यकता के अनुसार निर्धारित करने की स्वायत्तता होनी चाहिए। दूसरी ओर मुख्यत: यूरोपीय संघ एवं जापान इसे डब्ल्यू.टी.ओ. के एजेंडा में शामिल कराने पर अड़े थे। स्वयं मारन ने इन मुद्दों पर बहुपक्षीय बातचीत द्वारा सर्वमान्य ढाँचा निर्मित करने की बात कही है। इस तरह इसे भारत की पराजय कहा जा सकता है क्योंकि भारत के विरोध के बावजूद ये मुद्दे डब्ल्यू.टी.ओ. की भावी वार्ता सूची में शामिल हो गए।

लेकिन सच्चाई यहीं तक सीमित नहीं है। इसका दूसरा पक्ष यह है कि भारत की कठोरता से अड़े रहने के कारण इसे आगे के लिए टाल दिया गया। इन पर बातचीत की शुरुआत सन् २००३ के अगले मंत्रिस्तरीय सम्मेलन के बाद ही होगी। दूसरे, इस पर आम राय बनाने के लिए सम्मेलन के अध्यक्ष युसफ हुसैन कमाल को यह घोषणा करनी पड़ी कि इन पर बातचीत के पहले अगले मंत्रिस्तरीय सम्मेलन में सहमति आवश्यक होगी। इसे घोषणापत्र में तो नहीं पर उसके साथ एक दस्तावेज के तौर पर स्वीकार किया गया है। यह कहा जा सकता है कि अगर भारत

भारत ने अंत - अंत तक अपना यह मत प्रकट किया कि संपन्न देश पहले समझौते में किए गए उन वायदों को पूरा करें जोकि विकासशील देशों के हितों से संबंधित है और सच्चाई यह है कि भारत की इस माँग को पूरा महत्व मिला। क्रियान्वयन संबंधी लगभग ५० सामान्य मुद्दों का तो वहीं निपटारा हो गया, शेष के बारे में यह कहा गया है कि बातचीत में इन्हें प्राथमिकता दी जाएगी।

...मत नहीं हो तो इसे बातचीत के अगले दौर ...शामिल नहीं किया जा सकता। हालांकि ...ले से इस संबंध में कोई भविष्यवाणी ...चित नहीं होगी, पर तत्काल इसे आगे के ...ए टाल देने एवं सहमति की आवश्यकता ...इस शर्त के साथ नत्थी करवाने को कम ...कम आंशिक सफलता तो कहा ही ...एगा।

पर्यावरण जैसे मुद्दे पर भी भारत सरकार ...ी आचोलचना हो रही है। यह सच है कि ...रत पर्यावरण को व्यापार से जोड़ने का ...रोधी था। सम्मेलन में भी व्यापार के लिए ...र्यावरण मानक निर्धारित करने का मुद्दा ...रोपीय संघ बनाम विकासशील देशों के ...ीच टकराव का विषय बन गया था। लेकिन ...अंततः इस पर भी सन् २००३ के बाद सीमित ...बातचीत को स्वीकार कर लिया गया। यह ...बात सही है कि तत्काल सीमित शब्द से इसका दायरा काफी छोटा दिखता है लेकिन डब्ल्यू.टी.ओ. के पूर्व गैट वार्ता का अनुभव यह बताता है कि आरंभ में छोटा दिखने वाला विषय भी धीरे-धीरे काफी बड़ा एवं महत्वपूर्ण हो जाता है। इसलिए यह संभव है कि पर्यावरण मानक भविष्य में विकासशील देशों के निर्यात को बाधित करने का प्रमुख अस्त्र बन जाए। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि यूरोपीय संघ के लिए यह मामला काफी महत्व का है। लगभग हर देश में ग्रीन पार्टियाँ सक्रिय है जो पर्यावरण मानकों के प्रति अत्यंत ही संवेदनशील हैं। वैसे ये जेनेटिक मोडिफाइड बीजों व फसलों के विरोधी हैं एवं इस तरह प्रकारांतर से वे भारत के इस मामले में सहयोगी भी साबित हो सकते हैं।

वैसे आलोचकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि अपने रूख से थोड़ा बहुत पीछे ...टने की कार्रवाई एकतरफा नहीं है। वस्तुतः भारत ही केवल कुछ मामलों पर पीछे नहीं हटा है विकसित देशों को भी अनेक मामलों पर पीछे हटना पड़ा है। ट्रिप्स यानी व्यापार आधारित बौद्धिक संपदा अधिकार का मामला इसका ज्वलंत नमूना है। दस्तावेज में साफ उल्लिखित है कि इस समझौते का क्रियान्वयन इस तरह हो कि यह सार्वजनिक स्वास्थ्य के मामले में सदस्य देशों का सहयोगी बने। विशेष रूप से इसमें दवाओं तक सभी की पहुँच जैसी शब्दावली का प्रयोग किया गया है। यही नहीं आपातकालीन स्वास्थ्य समस्याएं एवं महामारी के काल में पेटेंट के एकाधिकार को तोड़ने का अधिकार भी सदस्य देशों को मिला है। इस साल भारतीय कंपनियों ने अफ्रीका में एड्स की सस्ती दवाओं की पेशकश कर इस समस्या को उजागर किया था कि पेटेंट कानून कुछ मामलों में कितना अमानवीय हो सकता है। अब एड्स व मलेरिया जैसी बीमारियों के लिए सस्ती दवायें पाने में पेटेंट कानून बाधा नहीं होगी। यह एक बड़ी विजय है और इस विजय का सेहरा अकेले भारत के सिर पर जाता है। अगर विकसित देश तैयार नहीं होते तो क्या ऐसा लोकहितकारी निर्णय हो पाता? इसी प्रकार एंटी डम्पिंग मामले में अमेरिका अपने देश की स्टील एवं सेमीकंडक्टर लॉबी के विरोध के बावजूद एंटी डम्पिंग के मामले में संयम बरतने, इस पर आगे बातचीत करने एवं तत्काल यह रियायत देने को तैयार हो गया कि किसी मामले के अस्वीकार होने के एक साल के भीतर दुबारा इसे नहीं लाया जाएगा। अब इसके बाद विकसित देशों के लिए एंटी डम्पिंग के आधार पर विकासशील देशों के व्यापार पर अड़ंगा लगाना थोड़ा कठिन होगा। आगे वार्ता में यह संभव है कि कुछ और रियायतें भारत सहित विकासशील देशों को मिले।

भारत जैसे देश के लिए कृषि भी काफी महत्वपूर्ण मामला है। आरंभ में कृषि सब्सिडी के मुद्दे पर यूरोपीय संघ, जापान व ऑस्ट्रेलिया किसी प्रकार का रियायत देने को तैयार नहीं थे। यूरोपीय संघ के लिए कृषि सब्सिडी उनके व्यापारिक हितों की पुष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं है, कृषि लॉबी का समर्थन उनके राजनीतिक अस्तित्व के लिए भी आवश्यक है। फ्रांस में तो राष्ट्रपति का चुनाव निकट है। बावजूद इसके यूरोपीय संघ ने सब्सिडी में चरणबद्ध कटौती जैसी रियायत का जोखिम उठाया। यह बात ठीक है कि इसकी निश्चित समय सीमा तय नहीं की गई है। पर तत्काल इतना ही वायदा कम नहीं है। आखिर कटौती की दिशा में आगे बढ़ने के बाद वे पीछे तो नहीं हट सकते और कृषि अब विस्तृत बातचीत के एजेंडे में है। जाहिर है कि भारत सहित अन्य विकासशील एवं कम विकसित देशों के कृषि संबंधी सामानों के निर्यातक इस फैसले से उत्साहित हुए होंगे। भारत ने वैसे भी खाद्य सुरक्षा एवं ग्रामीण विकास संबंधी जो छूटें ली हैं उसमें भारतीय कृषि व्यापार की सुरक्षा के उपाय निहित है। क्या इन तथ्यों को नजरअदाज करके एकपक्षीय दृष्टि से यह कहना कहीं से भी सही लगता है कि भारत ने ही अधिकतम रियायतें दे दी है?

बेशक, भारत ने सम्मेलन के पहले जो स्टैंड लिया था उसके आधार पर यह लग सकता है कि विस्तृत बातचीत की प्रक्रिया आरंभ करने पर बनी सहमति इसकी पराजय है। लेकिन यह निष्कर्ष भी सर्वथा उचित नहीं माना जा सकता। यह बात सही है कि भारत पुनः किसी विस्तृत बातचीत की शुरुआत के विरुद्ध अपना मत प्रकट कर रहा था। भारत की मुख्य माँग पहले से हुए समझौतों के क्रियान्वयन वाले मुद्दे के निपटारे का था। भारत ने

Scanned with OKEN Scanner

अंत - अंत तक अपना यह मत प्रकट किया कि संपन्न देश पहले समझौते में किए गए उन वायदों को पूरा करें जोकि विकासशील देशों के हितों से संबंधित है और सच्चाई यह है कि भारत की इस माँग को पूरा महत्व मिला। क्रियान्वयन संबंधी लगभग ५० सामान्य मुद्दों का तो वही निपटारा हो गया, शेष के बारे में यह कहा गया है कि बातचीत में इन्हें प्राथमिकता दी जाएगी। जाहिर है कि इन मुद्दों का निपटारा आगे किसी भी बातचीत की सफलता के लिए अनिवार्य होगा। इस संबंध ध्यान रखने की बात यह भी है कि भारत में बातचीत के नए दौर (राउण्ड) जैसी शब्दावली प्रयुक्त हो रही है, जबकि घोषणा-पत्र में राउण्ड शब्द है ही नहीं। बातचीत को अंग्रेजी में 'वर्क प्रोग्राम' कहा गया है। इसे हिन्दी में कार्यक्रम कह सकते हैं। यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत जैसे देश डब्ल्यू.टी.ओ. में अपने को कमजोर या क्षति की स्थिति में आज अगर पाते हैं तो इसका मूल कारण ही यही है कि पूर्व की बातचीत में अपना पक्ष ठीक से नहीं रखा गया। जाहिर है कि जो सजग देश थे उन्हें सब कुछ निर्धारित करने का खुला अवसर प्राप्त हो गया। इसकी भरपायी तभी हो सकती है जब त्रुटिपूर्ण दिखने वाली प्रत्येक व्यवस्था पर बातचीत हो एवं भारत अपना पक्ष ठीक प्रकार से रखकर अपना हित साधन करे। दोहा बैठक में भारत ने जिस प्रौढ़ता (मैच्योरिटी), सजगता, आत्मविश्वास व साहस का परिचय दिया है उससे यह आशा जगती है कि आगे की बातचीत में भारत के स्वाभाविक हितों पर कुठाराघात नहीं होगा। भारत का यह अनुभव भविष्य की बातचीत एवं मोलभाव में उसका मार्ग प्रशस्त करेगा, ऐसी आशा की जा सकती है।

डब्ल्यू.टी.ओ. के संदर्भ में विचार करते समय हमें इस संस्था के स्वरूप को कभी नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। सरकारें इसके सदस्य अवश्य हैं, पर यह व्यापार से संबंधित संस्था है। वास्तव में डब्ल्यू.टी.ओ. जैसी व्यापार के नियमों को निर्धारित करने वाली संस्था के साथ व्यवहार में प्रत्येक देश की भूमिका अपने व्यापारिक स्वार्थों की रक्षा के इर्द-गिर्द ही सीमित होगी और जब सभी सदस्य देशों की आकांक्षायें अलग-अलग हों तो फिर बीच का रास्ता निकालना ही एकमात्र उपाय रह जाता है। ११ सितम्बर को अमेरिका पर हुए हमले एवं विश्वव्यापी आर्थिक मंदी की हालत में कोई भी देश बातचीत की विफलता नहीं चाहता था। अपने व्यापारिक स्वार्थों एवं उससे निकले अड़ियल रूख के बावजूद सभी को यह अहसास था कि बातचीत का टूटना पूरे विश्व के लिए घातक होगा। सिएटल का पिछला मंत्रिस्तरीय सम्मेलन गतिरोध की अवस्था में समाप्त हुआ था। यदि दोहा भी उसी परिणति को प्राप्त हो जाता तो फिर डब्ल्यू.टी.ओ. का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता। और सच कहा जाए तो डब्ल्यू.टी.ओ. को हम कितना भी विरोध क्यों न करें इसके न रहने का मतलब व्यापार के संबंध में एक-एक देश के साथ सैकड़ों-हजारों समझौते करना है। यह कितना कठिन व जोखिम भरा काम है, इसकी महज ही कल्पना की जा सकती है। वैसे भी मान लीजिए, इस संस्था को लाख प्रयासों के बावजूद यदि मरना ही है तो इसका दोष भारत ही अपने मत्थे क्यों ले?

वास्तव में सभी देशों के वाणिज्य मंत्रियों ने समय की माँग एवं वस्तु स्थिति को समझा एवं अपने रूख को लचीला बनाया। दोहा सम्मेलन का एक सर्वसम्मत घोषणा-पत्र की स्वीकृति के साथ सम्पन्न होना इस बात का प्रमाण है कि परस्पर मतभेद के बावजूद कोई भी देश दोहा को सिएटल की परिणति बनाने के पक्ष में नहीं था। भारत में जो लोग डब्ल्यू.टी.ओ. में गरीब व विकासशील देशों की ओर से नेतृत्व करने वाली भूमिका वकालत करते रहे हैं, वे इस दयनीय सच्चाई को नजरअदांज कर रहे हैं कि इन देशों ने आपस में जैसी अनेकता प्रदर्शिता की है उसमें इस प्रकार की कल्पना मूर्खों के स्वर्ग में रहने जैसा ही है। वास्तव में भारत को कई मामले में पीछे हटना ही इसलिए पड़ा कि विकासशील देशों का पर्याप्त समर्थन इसे नहीं मिला। भारत, पाकिस्तान, इण्डोनेशिया, जमैका, डोमिनिकन रिपब्लिक जैसे १४ समान विचार वाले देशों का समूह अंततः असमान विचारों वाला समूह साबित हो गया। भारत और पाकिस्तान के बीच इस बात पर सहमति बनी थी कि टेक्सटाईल निर्यात संबंधी कोटा के मामले में दोनों समान रूप से कट्टर रूख अपनाएँगे एवं अमेरिका को इस बात के लिए मनाने की कोशिश करेंगे कि कोटा की समाप्ति की जो अंतिम तिथि १ जनवरी २००५ है उसे पीछे खिसकाया जाए। लेकिन मामला जैसे ही गरमाया, पाकिस्तान के साथ अन्य देश भी पीछे हट गए। यह स्थिति केवल एक मामले में नहीं थी। एशिया से लेकर अफ्रीका, लातीनी अमेरिका एवं कैरिबियाई द्वीप समूह के अनेक देशों ने अधिकांश मुद्दों पर भारत के साथ होने का आश्वासन दिया था। परंतु सभी देशों ने अपने लिए मोलभाव कर कुछ आवश्वासन मिलते ही भारत को अकेला छोड़ दिया। इस हालत में आखिर भारत अकेले कितना संघर्ष कर सकता था और क्या अकेले इस प्रकार के टकरावपूर्ण रूख पर अंत तक अड़े रहना दूरगामी दृष्टि से भारत के हित में होता? कदापि नहीं। इसलिए डब्ल्यू.टी.ओ. के मामले में यह नीति सर्वश्रेष्ठ व व्यावहारिक मानी जाएगी कि कड़ा रुख अपनाओ। अपने हितों के लिए अंतिम सीमा तक मोल-भाव करो और गतिरोध तक या बातचीत असफलता की सीमा तक पहुँचे उसके पहले जो प्राप्त हो उसमें भविष्य के मोल-भाव की जगह छोड़ कर तत्काल समझौता कर लो। इस नीति का भारत को तत्काल लाभ मिला है। तत्काल देशहित की भी यही माँग है कि डब्ल्यू.टी.ओ. की गलत नीतियों को खुलकर उजागर किया जाए। जनता को उसके संबंध में सही जानकारी दी जाए तथा भविष्य में आने वाली चुनौतियों से निपटने की तैयारी की जाए। मुरासोली मारन ने चीन के डब्ल्यू.टी.ओ. के सदस्य बनने के बाद उभारने वाली भारी व्यापारिक चुनौतियों की ओर भी संकेत करके इस दिशा में उचित पहल की है। ■

हमारे किसानों को लूटने की साजिश है : विश्व व्यापार संगठन

■ डॉ० कुँवरजी भाई जाधव

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना द्वितीय विश्व युद्ध के बाद १९४८ में हुआ। उस समय प्रत्येक देश में व्यापार कैसा हो, उसके बारे में वे सोचते थे किसी देश की आंतरिक स्थिति के बारे में नहीं सोचते थे। ठीक प्रकार की टैरिफ हो, ठीक प्रकार का माल मैटेरियल भेजा जाए। यानि व्यापार के बारे में चर्चा करते थे। और किसी के बारे में चर्चा नहीं करते थे तो इसी प्रकार से इसका राउण्ड्स हमेशा चलता-रहता था। इसमें जब आठवाँ राउण्ड हुआ जिसे उरूग्वे राउण्ड कहते हैं तब अमेरिकन इकॉनोमी तथा यूरोपीय इकोनॉमी की स्थित ठीक नहीं थी क्योंकि एक्सपोर्ट के लिए दोनों में कम्पीटिशन की एक्सपोर्ट के लिए यूरोपीय देश भी विकासशील देश को एक्सपोर्ट करना चाहते थे, अमेरिका भी चाहता था। तो प्रत्येक समय वो ज्यादा बजट रखते थे, एक्सपोर्ट सब्सिडी के लिए। एक स्टेज तो ऐसी आ गई कि कृषि का ८० प्रतिशत बजट एक्सपोर्ट सब्सिडिस में यूरोपियन देश देने लगे। इसलिए अमेरिका यूरोप में लड़ाई हो रही थी तो उन्होंने एक समझौता किया जिसको ब्लेयर हाऊस ट्रीटी कहते है। तो ब्लेयर हाऊस ट्रीटी १९९२ में हुई, दोनों ने यह समझौता किया कि आप भी सब्सिडी न दे, हम भी नहीं देगें वरना लाभ तो विकासशील देश को होगा और हम बर्बाद हो जाएँगे। इस संधि में वे लोग विचार किए की कैसे विकासशील देश को ट्रीट करना है और विकसित देश को कैसे ट्रीट करना है, उसमें जापान को छोड़कर जो विकसित देश था, उनको ७७ प्रतिशत तक सब्सिडी दी जा सकती थी। बाकी सभी देश को कृषि उत्पादन की सब्सिडी नहीं देने की बात कही गई। उत्पादन की सब्सिडी कम करने की बात कही गई। इस ट्रीटी (संधि) के बाद डंकेल को चेयरमैन बनाया। ब्लेयर हाऊस ट्रीटी ही डंकेल ट्रीटी हो गई, यानि एक साजिश के तहत दोनों देश डंकेल प्रस्ताव लाई और १५ अप्रैल १९९४ को नरसिंह राव को उस पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया नहीं तो आई.एम.एफ और विश्व बैंक से पैसा नहीं मिलेगा। इसलिए बिना पढ़े हुए इसे स्वीकार करो नहीं तो डंकेल यानि डब्ल्यू. टी.ओ. से बाहर रहो, यानि अगर वो कहे कि कृषि नहीं रखना है तो नहीं। बाद में १५ अप्रैल १९९४ को स्वीकार हुआ तो उसके बाद १ जनवरी १९९५ को यह अप्लाई हुआ और इसका नाम डब्ल्यू.टी.ओ. हो गया। यानि डब्ल्यू.टी.ओ. १९४८ से चलता था उस समय उसमें कृषि नहीं था। १९८६ में उरूग्वे राउण्ड

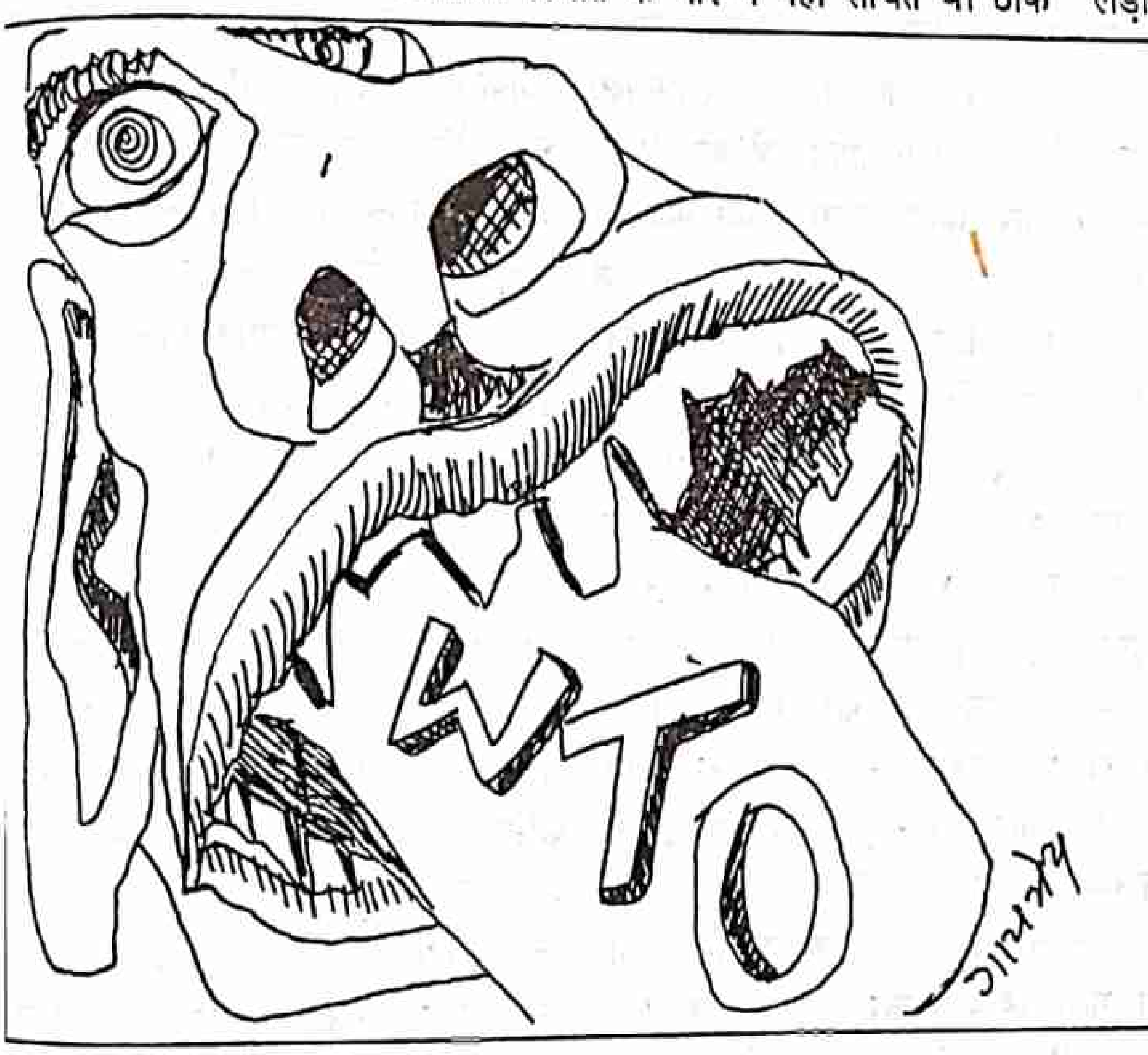

दोनों ने यह समझौता किया कि आप भी सब्सिडी न दे, हम भी नहीं देगें वरना लाभ तो विकासशील देश को होगा और हम बर्बाद हो जाएँगे।

Scanned with OKEN Scanner

जब डंकेल प्रस्ताव लागू करने की बात चल रही थी, उस समय अमेरिका ने ५०० वैज्ञानिक और अर्थशास्त्री बैठाए थे कि कौन-सा शब्द कब और कहाँ रखा जाए और हम लोगों को कुछ भी मालूम नहीं था, आज भी मालूम नहीं है।

में दोनों को सरप्लस प्रोडक्शन एग्रीकल्चर के थे। अमेरिका में इस समय १४ करोड़ हेक्टेयर भूमि है और इसमें सिंचाई भी है और उनकी आबादी .लगभग २५ करोड़ है वहीं हमारी आबादी ६० करोड़ थी जो बहुत बड़ा बाजार है? तो उनका सरप्लस कहाँ निकलेगा तो बाजार कैप्चर करने के लिए ब्लेयर हाऊस ट्रीटी बनाया, वही डंकेल ट्रीटी हुआ। इसका अध्ययन करने पर एक साजिश का पता चला। डब्ल्यू.टी.ओ. में तीन बॉक्स हैं – अम्बर, ग्रीन और ब्ल्यू एग्रीकल्चर प्रोडक्शन की सब्सिडी घटाना इसमें बताया गया। हम २४ प्रतिशत सब्सिडी कम करेंगे और विकसित देश ३६ प्रतिशत कम करेंगे। इसे डवलोपिंग देश को १० साल और विकसित देश को ५ साल में करना है। उसके पश्चात् उन्होंने सब्सिडी घटाई। बाकी सब्सिडी सोशल सिक्यूरिटी के नाम पर दिए, जिसे ग्रीन बॉक्स कहते हैं। हमारे पास ग्रीन बॉक्स नहीं है, बहुत सारे किसान को ग्रीन बॉक्स के बारे में मालूम ही नहीं है। इस तरह हमारे किसानों को लूटने की एक साजिश है – विश्व व्यापार संगठन।

इसलिए चीन आज तक विश्व व्यापार संगठन का सदस्य बनना चाहता था लेकिन उसे वो नहीं बनने देते थे। अब २००१ में चीन को सदस्य बनाया गया, क्योंकि चीन में प्रोडक्शन ज्यादा है, वो भी एक्सपोर्ट कर सकते हैं और अमेरिका और यूरोपीय देश को कम्पीटिशन नहीं चाहिए। इसलिए चीन को नहीं आने देना चाहते थे। फिर उन्होंने हाईपो सेनिटरी मानक डाला, जिसमें पेस्टीसाईड्स हुआ वो स्वीकार नहीं करेंगे दूसरी और कैमीकल पेस्टीसाइड्स डालेंगे तो हमारा माल वो स्वीकार नहीं करेंगे, उनका हमको ३ प्रतिशत लेना पड़ेगा। हमारे पास साधन नहीं है कि उनको जाँचा जाए और वो दूसरा प्रेशर डालेंगे, हमको विश्व बैंक से कर्ज नहीं मिलेगा, इसी तरह से विकासशील देश को दबाव में डालकर वो हस्ताक्षर करवाएँगे। अभी के बैठक में सभी विकासशील देश भारत के साथ थे कोई नई तरह की लेन-देन नहीं हुई। अब तक ६ साल के सुधार में जो गलतियाँ हुई है वो चेक होना चाहिए। वो अमेरिका तैयार नहीं था। लेकिन विकासशील देश तैयार थे। इस तरह विश्व बैंक और विश्व व्यापार संगठन साथ-साथ काम करते है, विश्व बैंक से कर्ज चाहिए तो विश्व व्यापार संगठन प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करो? विश्व व्यापार संगठन में क्या लिखा है आज तक कितने किसानों को पता है? उसमें बहुत सारी बात जैसे पेटेंट आदि के बारे में किसानों को मालूम नहीं है, क्योंकि पूरी रिपोर्ट अँग्रेजी में लिखी गई है। इसमें यह भी कहा गया है कि सभी सदस्य को इक्वल स्टेट्स होना चाहिए। इस पर हमने जोर दिया कि हमारे भारत में तो सिलींग है ऐरिगेटेड एरिया २० एकड़ है और नॉन-एरेगेटेड एरिया ५० एकड़ है। और अमेरिका में तो दो-दो हजार एकड़ का फार्म है तो हमारा सिलींग वाला किसान उसके साथ कैसे मुकाबला करेगा।

हमने कहा भारत सरकार को उनका ही माल स्वीकार करना चाहिए जो ५० एकड़ से कम किसान है। क्योंकि उसमें इक्वल स्टेट्स की बात कही गई है। अगर हम सिलींग घटा देंगे तो हमारे पास १० करोड़ किसान हैं, साढ़े चौदह करोड़ हेक्टेयर खेती लायक भूमि है लगभग साढ़े तीन करोड़ हेक्टेयर में सिंचाई है और सभी मिलाकर लगभग १८ करोड़ हेक्टेयर भूमि है और सौ करोड़ से ज्यादा आबादी है, वहाँ ५६ करोड़ भूमि और २३ करोड़ की आबादी है, उसका सरप्लस यहाँ भेजना चाहते है, इसलिए वो ऐसा नियम रखना चाहते है जो विकासशील देश के किसानों को लाभदायी न हो। हमेशा बहुराष्ट्रीय कंपनियों जैसे मौनसेन्टो आदि का बीज हमें खरीदना पड़ेगा। इस तरह का साजिश अब धीरे-धीरे सभी लोगों को पता चल गया है। इसके लिए सरकार को चाहिए कि इक्वल स्टेट्स लाए और पुराना सुधार जो नहीं हुआ है वह सुधार हो और जो सुझाव अपने देश के विरुद्ध हो उसे निकाल देना चाहिए। यानि एक तरह से वे लोग अपना प्रोटेक्शन कर रहे थे, जब डंकेल प्रस्ताव लागू करने की बात चल रही थी, उस समय अमेरिका ने ५०० वैज्ञानिक और अर्थशास्त्री बैठाए थे कि कौन-सा शब्द कब और कहाँ रखा जाए और हम लोगों को कुछ भी मालूम नहीं था, आज भी मालूम नहीं है। लेकिन इस बैठक में भारत सरकार के वाणिज्य मंत्री ने सही निर्णय लिया, हालाँकि वाद में कुछ समझौते करने पड़े ताकि हमें विश्व व्यापार संगठन छोड़ना नहीं पड़े लेकिन अमेरिका और यूरोप सावधान हो गए कि अब हमारी चलने वाली नहीं है। बाद में वो नेगोशिएशन करेंगे। पहली बार विकसित देश के सामने भारत ने आवाज उठाई और सभी विकासशील देश समर्थन किए, हालाँकि आखिरी में कुछ लोग थोड़ा सा समझौता किए, इस तरह से एक नई दिशा खुल गई। अब यह लगता है कि भारत सरकार अब देश के बारे में सोच रही है।

हम अपना कॉस्ट ऑफ प्रोडक्शन घटा सकते है। फर्टिलाइजर, पेस्टीसाइड्स के कारण कॉस्ट बढ़ जाती है। हमने एक सर्वे किया था तो एक एकड़ भूमि में करीब सात हजार एक सौ रुपया का खर्च आता है और उसमें पेस्टीसाइड्स का खर्च लगभग ४००० आता है, बाकि मजदूरी आदि में होता है, अगर गाय के गोबर से कम्पोस्ट बनेगा तो लगभग ५०० का खर्च आएगा तो इस तरह किसान को लाभ होगा। ऐसा कई किसान महाराष्ट्र, गुजरात में प्रयोग कर रहे हैं। इस तरह लगता है कि भारत सरकार की शान ठिकाने आ गई है।

टैरिफ कम करने के लिए एण्टी डम्पिंग लागू करेंगे। अमेरिका ने हमारा टैक्सटाईल

(शेष पृष्ठ २० पर)

Scanned with OKEN Scanner

ट्रिप्स, दोहा वार्ता और भारत

■ बी०के० कैला

संसार में तीन तरह के देश हैं – विकसित, विकासशील और अल्प-विकसित। सबकी समस्याएँ अलग-अलग हैं। दुर्भाग्य से विश्व व्यापार संगठन के समझौते सब पर समान रूप से लागू हुये। विकासशील देशों या अल्पविकसित देशों को इन समझौतों के क्रियान्वयन के लिए ज्यादा समय दिया गया। गैट के दौरान या उरुग्वे दौर की वार्ताओं के दौरान गैट के एक प्रावधान 'डिफरेंशियल एण्ड प्रेफेरेन्शियल ट्रीटमेन्ट' के अंतर्गत विकासशील देशों तथा अल्प-विकसित देशों को अपने आवश्यकतानुसार नियमों को मानने या न मानने की छूट थी। पर उरुग्वे राउण्ड के बाद ये अधिकार खत्म हो गए।

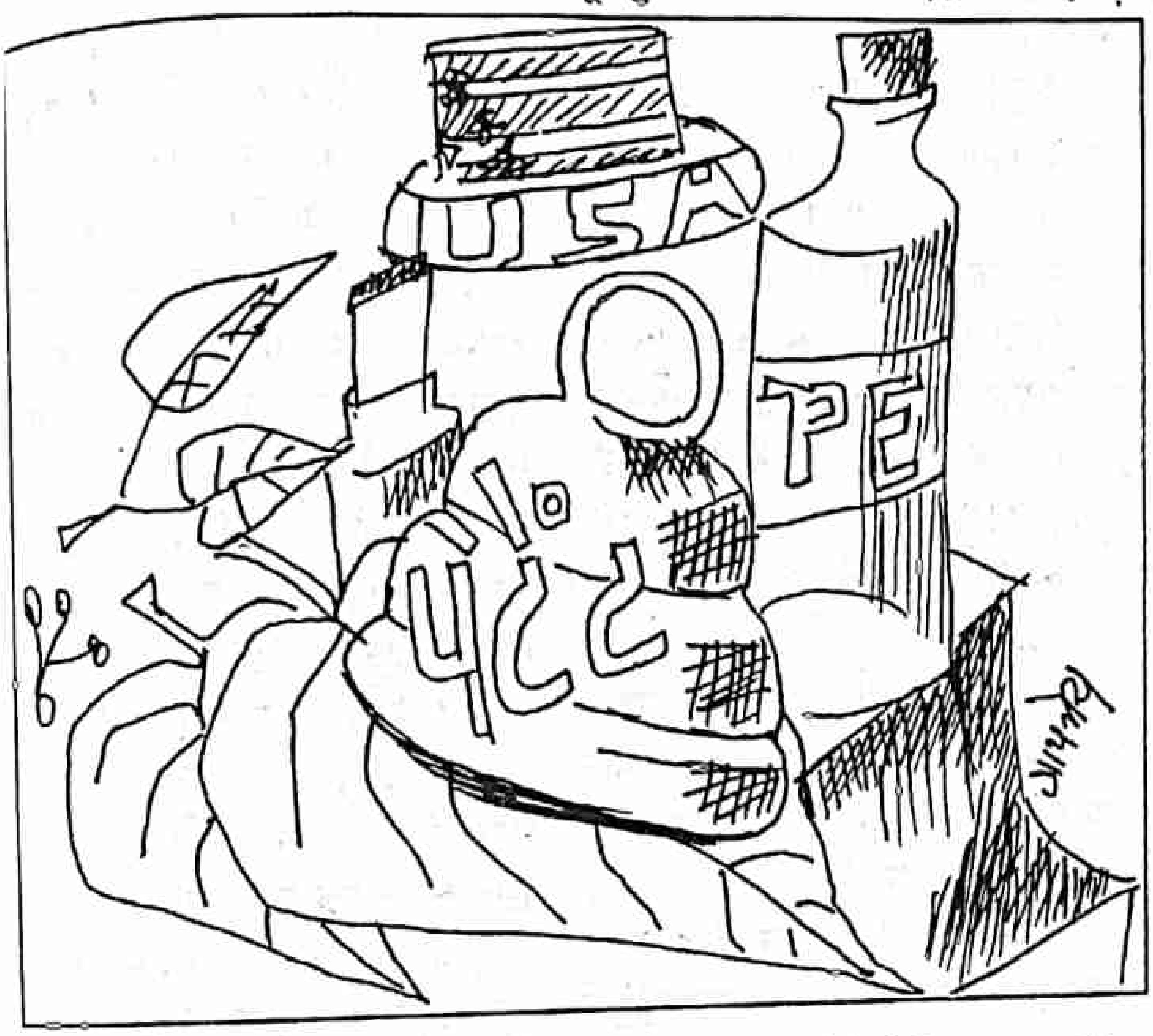

ट्रिप्स समझौता, सदस्य राष्ट्रों द्वारा अपने जनता के स्वास्थ्य रक्षा हेतु मानकों को तैयार करने से नहीं रोकेगा।

इस दोहा वार्ता के पहले जारी डी.एम.डी. में विकसित राष्ट्रों के इस विचार को प्रमुखता दी गयी थी कि एक नए दौर की वार्ताएँ शुरू की जाएँ जिसमें कई नए मुद्दे शामिल करने की कोशिश की गयी थी। ये मुद्दे सरकारी खरीद, प्रतियोगी नीतियों, श्रम तथा पर्यावरण मानक एवं निवेश से संबंधित थे। विकासशील राष्ट्रो ने भारत के नेतृत्व में इसका विरोध किया और कहा कि उरुग्वे राउण्ड के समझौतों के ठीक ढंग से लागू न होने से हमें काफी दिक्कतें आ रही हैं और हमें बहुत नुकसान उठाना पड़ रहा है पहले उस पर विचार होना चाहिए। हम पहले से जूझ रहे हैं और अब आप हम पर नए दौर के नए मुद्दों को थोपकर हमारी मुसीबतें और बढ़ा दें तो ये फैसला हुआ कि नए मुद्दों के अगले दौर की वार्ताओं में लिया जाएगा और अभी कार्यान्वयन वाले मुद्दों पर चर्चा हो। इसमें सब्सिडी और पेटेंट (ट्रिप्स समझौता) विकासशील देशों के लिए महत्वपूर्ण थे।

पेटेंट हर लिहाज से एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। ट्रिप्स के कार्यान्वयन से हमारे यहाँ दवाओं एवं अन्य पेटेंटेड वस्तुओं की कीमतें बहुत ऊपर चली जाएँगी और उपलब्धि में दिक्कत आएगी। उपलब्धता तथा दोनों की समस्या विकासशील देशों के समक्ष आएगी। इसका विचार जून से चल रहा था। जून में ६० विकासशील देशों ने मिलकर एक संयुक्त प्रस्ताव दिया था। ट्रिप्स काउंसिल में इस पर विचार तो चल रहा था लेकिन उसमें कोई फैसला नहीं हो पा रहा था। विकासशील देशों का कहना था कि हमें दवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने की पूरी छूट मिले ताकि हम अपने स्वास्थ्य सुरक्षा तंत्र को सही कर सकें। विकसित देश कह रहे थे कि एड्स इत्यादि बीमारियों को आप राष्ट्रीय आपदा घोषित कर दीजिए तो आप अपने यहाँ दवाओं की सस्ती एवं सुलभ उपलब्धता के लिए प्रावधान कर सकते हैं। विकसित देश उपलब्धता को सीमित रखना चाहते थे लेकिन विकासशील देश इसे बढ़ाना चाहते थे। तो इसके लिए विकसित एवं विकासशील दोनों राष्ट्रों अलग-अलग विकल्प प्रस्तुत किए। अंततः दोनों के बीच एक सहमति तैयार हुई और वह "ट्रिप्स समझौता और जन स्वास्थ्य पर घोषणा" के

Scanned with OKEN Scanner

उत्पाद लाइसेंस व्यवस्था तथा २० वर्षीय पेटेंट अधिकारों के कारण देश के दवा उद्योग पर संकट आ गया है। देश में २२,००० दवा बनाने वाली इकाईयाँ हैं। इस व्यवस्था के लागू होने के बाद उनमें से कितनी बच पाएँगी यह कहना मुश्किल है। मेरे अंदाजे से २२०० से भी बच जाते हैं तो बड़ी बात होगी। और मैं तो ये भी कहूँगा कि अगर ५०० भी बच जाएँगे तो बड़ी बात होगी।

नाम से दोहा में सामने आया। यह जो फैसला हुआ वो मुख्यतः ठीक ही हुआ है लेकिन अभी और गहराई में आने की आवश्यकता है।

निम्नलिखित प्रमुख फैसले ट्रिप्स पर दोहा में लिए गए –

१. हम बहुत से विकासशील एवं अल्प-विकसित राष्ट्रों में जन-स्वास्थ्य पर विशेषकर एच.आई.वी. (एड्स), टी.बी., मलेरिया एवं अन्य महामारियों के बढ़ते खतरे या दुष्प्रभावों को स्वीकार करते हैं।

इस एक महत्वपूर्ण बात को उन्होंने मान्यता प्रदान की।

२. हम इस बात पर जोर देते हैं कि ट्रिप्स समझौता इन समस्याओं से व्यापक रूप से राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर निपटने में सहयोगी होगा।

ये भी उन्होंने मान लिया कि इन मुद्दों को राष्ट्रीय कोण से भी देखा जा सकता है अर्थात् आप ये जो पहला ऑब्जेक्टिव है उसका प्रावधान आप अपने राष्ट्रीय कानूनों में कर सकते हैं।

३. हम यह स्वीकार करते हैं बौद्धिक संपदा अधिकार की सुरक्षा नए दवाओं में विकास के लिए महत्वपूर्ण है। हम इसके कारण दवाओं के मूल्य पर पड़ने वाले प्रभावों को भी स्वीकृति प्रदान करते हैं।

उन्होंने इसे अनुसंधान के कोण से भी देखा और माना कि नए विकसित दवाओं का मूल्य ज्यादा होगा।

४. हम इस बात पर तैयार है कि ट्रिप्स समझौता, सदस्य राष्ट्रों द्वारा अपने जनता के स्वास्थ्य रक्षा हेतु मानको को तैयार करने से नहीं रोकेगा। इसके अनुसार जहाँ हम ट्रिप्स समझौते के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जाहिर करते हैं वही हम यह भी निश्चपूर्वक कहते हैं कि इसका अधिनिरूपण एवं क्रियान्वयन विश्व व्यापार संगठन के सदस्य राष्ट्रों द्वारा अपने जन-स्वास्थ्य की रक्षा के अधिकार के निर्वहन में सहयोगी के रूप में विशेषकर सभी के लिए दवाओं की सुलभता के लिए होगा।

इस संबंध में हम विश्व व्यापार संगठन के सदस्य राष्ट्रों के ट्रिप्स समझौते के लचीले प्रावधानों के पूर्ण उपयोग के अधिकार को मान्यता प्रदान करते हैं।

फैसले का यह चौथा बिन्दु सबसे महत्वपूर्ण है। यह विकासशील देशों के पक्ष में जाता है।

जो मुझे लगता है कि ये जो दोहा में वार्ताएँ हुयीं उसमें विकासशील देश एक-दूसरे के नजदीक आए, कुछ संयुक्त वक्तव्य दिए, कुछ संयुक्त घोषणाएँ की और सम्मेलन में डटे रहने की कोशिशें हुई।

सम्पूर्ण रूप से ट्रिप्स के ऊपर अच्छा है। नई दिल्ली में ४ जून को सम्पन्न हुयी "नेशनल वर्किंग ग्रुप ऑन पेटेंट लॉ" की छठवीं अंतरराष्ट्रीय विचार गोष्ठी जो "ट्रिप्स और दवाओं की सुलभता" पर केन्द्रित थी, में हमने ये मुद्दे उठाए थे कि कार्यान्वयन के आधार पर हमें अपने नियमों में बदलाव कर ट्रिप्स समझौते को कार्यान्वित करना चाहिए। हम बच गए हैं क्योंकि विकासशील देशों के कार्यान्वयन संबंधी मुद्दों को दोहा में उठाया कि हम ये सोच रहे हैं, ये सही है या नहीं। अगर फैसले वर्तमान फैसलों के उलटे हो जाते तो हम और फँस जाते। हम अपना बचाव भी नहीं कर पाते। तो हमारा दवाब जो था, हमारे सोचने का ढंग जो था वो ये था कि हम कार्यान्वयन में सब कुछ कर सकते हैं तो हमें करना चाहिए। यह ट्रिप्स हमें अनुमति देता है कि आप कम्पल्सरी लाइसेंस देने की व्यवस्था बनाइए और उसके आधार पर अपने घरेलू उद्योगों की भूमिका निर्धारित कीजिए।

फिर, २० वर्षों के लिए किसी को पेटेंट अधिकार देना एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। क्योंकि उत्पादों में तीव्र गति के बदलाव आ रहे हैं। आज के उत्पादों की ५ से १० वर्षों के बाद कोई अहमियत नहीं रहती। अतः अगर आपने २० वर्षों का एकमात्र उत्पादन अधिकार दे दिया तो २० वर्षों के बाद उस उत्पाद का दोहन करने के लिए उसका मूल्य क्या है? जिनको आवश्यक लाइसेंस नहीं मिला तो २० वर्षों बाद वे क्या विक्री कर पाएँगे क्योंकि २० वर्षों में उससे अच्छे तीन चार उत्पाद आ चुके होंगे। तो आवश्यक लाइसेंस प्रदान करना मुख्य मुद्दा नहीं है। मुख्य मुद्दा है ट्रिप्स के पुनर्निरीक्षण का। और इसमें भी २० वर्षों के लिए एकाधिकार प्रदान करना एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। जिस समय यह प्रावधान किया गया था उस समय पेटेंट लेने में ८-१० वर्ष लग जाते थे और तब बाजार के दोहन के लिए १०-१२ वर्ष बचते थे। इसीमें उत्पादन शुरू करना था और फिर उसे बेंचना था। अब यह है कि पेटेंट लेने में अधिकमतम ३-४ वर्ष लगते हैं। अमेरिका और आस्ट्रेलिया जैसे देशों में तो महीनों क्या हफ्तों में मिल जाता है। इतनी जल्दी पेटेंट मिलने के कारण पेटेंट धारक का एकाधिकार अगले २० वर्षों तक उस पर रहेगा। उससे घरेलू उद्योगों पर आघात लगेगा। साथ ही वर्तमान प्रतियोगी वातावरण भी समाप्त हो जाएगा। अगर देखा जाए तो आज की स्थिति में १०-१२ वर्ष बहुत है।

अपने देश में अभी तक उत्पाद बनाने की प्रक्रिया का पेटेंट होता है। अब नए

Scanned with OKEN Scanner

...नूनों तथा ट्रिप्स प्रावधानों के कारण उत्पाद पेटेंट कराना पड़ेगा। प्रक्रिया पेटेंट होने कारण हमारे यहाँ दवाएँ सस्ती मिलती साथ ही हमारे देश में पेटेंट का समय ...ल ५ वर्षों का है। इसका भी हमारे यहाँ ...योगी वातावरण बनाए रखने में सहयोग । पर अब उत्पाद लाइसेंस की व्यवस्था ...गू हो जाने से इसके खत्म होने के आसार ...र आ रहे हैं।

उत्पाद लाइसेंस व्यवस्था तथा २० वर्षीय ...ट अधिकारों के कारण देश के दवा ...द्योग पर संकट आ गया है। देश में २२,००० ...वा बनाने वाली इकाईयाँ हैं। इस व्यवस्था ...े लागू होने के बाद उनमें से कितनी बच ...एँगी यह कहना मुश्किल है। मेरे अंदाजे ...। २२०० से भी बच जाते हैं तो बड़ी बात ...गी। और मैं तो ये भी कहूँगा कि अगर ...०० भी बच जाएँगे तो बड़ी बात होगी।

हमारे देश में जीने के अधिकार को ...मौलिक अधिकार का दर्जा मिला है। ट्रिप्स ...के प्रावधानों का इस पर भी असर पड़ेगा। दवाएँ महँगी हो जाएगी, नई की तो मुसीबत होगी ही पुरानी दवाओं की भी सुलभ उपलब्धता में गिरावट आएगी।

हमारे यहाँ पेटेंट कानून काफी दिनों से लम्बित पड़ा है। विश्व व्यापार संगठन के ट्रिप्स समझौते में हम फँस गए हैं। हमें दोहा वार्ता से राहत तो मिली है लेकिन वह थोड़ी ही है। पर जो अवधि है और प्रोडक्ट पेटेंट है या प्रक्रिया पेटेंट है उस पर भी २० वर्ष आ सकता है। उसमें आप बदलाव नहीं कर सकते। कुछ ऐसी चीजे हैं जिनके कार्यान्वयन में हमें २० वर्षों का अधिकार देना पड़ सकता है जिससे हमारे वर्त्तमान कानूनों या संविधान की सुपरमेसी खत्म हो जाएगी। वर्तमान कानूनों को बदलना ही पड़ेगा। ये हम मानकर चल रहे हैं। १९९४ में जब हमने उरूग्वे दौर की स्वीकृति दी तो हम यह मान कर आए कि हम कानूनों को विश्व व्यापार संगठन के हम में बदलेंगे। उससे बचने के लिए या तो विश्व व्यापार संगठन में कुछ छूट मिले या फिर हम या ट्रिप्स कोई एक विश्व व्यापार संगठन से बाहर निकल जाए। ये सब आने वाले समय पर निर्भर है।

अब अमेरिका ने दिसम्बर १९९३ में एक कानून पास किया कि "अमेरिकी संविधान और विश्व व्यापार संगठन के नियमों के बीच द्वंद्व की स्थिति में अमेरिकी संविधान मान्य होगा।" हमारे यहाँ भी इस तरह का प्रावधान रखना चाहिए कि विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों तथा भारतीय संविधान में टकराव होने की स्थिति में भारतीय संविधान मान्य होगा।

हमारे यहाँ इसके नियमों के विषय में कोई जागरुकता नहीं है। यहाँ तक कि इसे डील करने वाले सरकारी अधिकारी भी कई चीजें नहीं जानते। हमारे यहाँ इस पर बहस भी नहीं होती। अब दिसम्बर १९९९ में आई. पी.आर. पर ६ विधेयक संसद में बिना बहस के पास हो गए। सांसदों में जागरुकता ही नहीं है। लोग इस विषय की गंभीरता नहीं समझ रहे है।

ट्रिप्स के अनुसार घरेलू एवं बाहरी सभी कंपनियों को समान अधिकार दिए गए हैं। ब्राजील एवं दक्षिण अफ्रीका पर क्रमशः अमेरिका एवं ३९ बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा जो मुकदमें दायर किए गए थे उनका आधार भी सबके लिए समान अधिकार तथा उन देशों में समानांतर आयात की व्यवस्था का न होना था। यह अलग बात है कि उन्हें आम जनता की जागरुकता एवं विरोध के कारण अपने दावे वापस लेने पड़े। तो हमें यह भी देखना है कि नए कानून बनाते समय क्या-क्या आवश्यक है जैसे अनुसंधान के लिए ट्रिप्स में प्रावधान है कि पेटेंट दिए जाने के तुरंत बाद अन्य लोग भी उसी विषय पर अपने अनुसंधान कर सकते है या दवाएँ सस्ती दर पर मँगाने के लिए समानांतर आयात व्यवस्था बनाने की बात है। इसको दोहा वार्ता के ट्रिप्स घोषणा के बिन्दु ५(डी) में दिया गया है "प्रत्येक सदस्य राष्ट्र ट्रिप्स समझौते के प्रावधानों के प्रभावों का निःशेषण अपने राष्ट्रहित में तथा एम.एफ.एन. के लिए अनुच्छेद ३ एवं ४ के प्रावधानों के अनुरूप कर सकता है।" इसे अधिकारों के निःशेषण का 'प्रलेख-सार' कहा जाता है।

इसी के साथ कानून बनाते समय उनके लिए उपयुक्त कारण देना भी आवश्यक है जैसे अगर संविधान में 'समानान्तर आयात' की व्यवस्था की गयी है तो इसका कारण दवाओं का सस्ता आयात देना होगा।

अब एक मुद्दा तकनीक हस्तानांतरण का है। ट्रिप्स का एक उद्देश्य तकनीक का विकासशील देशों को हस्तानांतरण भी है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक लाइसेंस के साथ तकनीक हस्तानांतरण को भी जोड़ा जाना चाहिए।

सरकार को लोगों में जागरुकता पैदा करनी चाहिए। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों एवं अन्य कानूनों के विषय में किसानों को व्यापक जानकारी दी जानी चाहिए। जैसे गुजरात में कपास की फसल पर हुआ विवाद किसानों को कानून की जानकारी न होने के कारण उठा। किसानों को पता ही नहीं कि 'सीड एक्ट' क्या है। इसके अंतर्गत केवल सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त बीजों का प्रयोग ही उत्पादन के लिए किया जा सकता है। वहाँ किसानों को बीटी कपास (यह बीज जेनेटिकली मोडिफायड है) की बीजें दी गयीं जो हमारे यहाँ निबंधित नहीं है। वहाँ मुद्दा यह होना चाहिए कि किसानों तक ये बीज सरकारी मान्यता न होने पर भी कैसे पहुँचे।

भारतीय परिदृश्य में इस ट्रिप्स समझौते का क्रियान्वयन प्रमुख मुद्दा है। अभी जो झुकाव है वह यह है कि किसी तरह का कोई झगड़ा क्रियान्वयन की मुद्दे पर खड़ा नहीं होना चाहिए। लेकिन इस तरह की सोच रहने पर हम बहुत कुछ खो देंगे।

Scanned with OKEN Scanner

हमारी अभिवृत्ति 'प्रोएक्टिव' होनी चाहिए। अपने राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा सर्वोपरि है। डिस्प्यूट से डरने का कोई कारण नहीं है। डिस्प्यूट से ही रास्ता मिलता है। अब जैसे ६० देशों ने जो प्रस्ताव किए अगर उन्हें सीधे लागू ही कर देते तो क्या हो जाता? क्या ६० मुकदमें होते? करें! वे ६० मुकदमे करते या एक ही करते यह देखने वाली बात होती या फिर वे पीछे भी हट सकते थे क्योंकि इन ६० विकासशील देशों की एकता उनकी ताकतों से ताकतवर होती। बिना इस तरह के कार्यों के आप राष्ट्रीय हितों का संरक्षण नहीं कर सकते।

अब अमेरिका ने दिसम्बर १९९३ में एक कानून पास किया कि "अमेरिकी संविधान और विश्व व्यापार संगठन के नियमों के बीच द्वंद्व की स्थिति में अमेरिकी संविधान मान्य होगा।" हमारे यहाँ भी इस तरह का प्रावधान रखना चाहिए कि विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों तथा भारतीय संविधान में टकराव होने की स्थिति में भारतीय संविधान मान्य होगा।

ट्रिप्स से संबंधित महत्वपूर्ण बात यह है कि इस व्यवस्था में रहते हुये हमें अपने आप को बचाए रखना है। हमारे अनुसंधानों एवं उद्योगों पर ऋणात्मक प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। इसके लिए हमें ट्रिप्स के अनुच्छेद ३० का उपयोग करना चाहिए। साथ ही डिस्प्यूट के लिए हमें भी विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों के अनुरूप 'हायर एडमिनिस्ट्रैटिव अथॉरिटी' का प्रावधान करना चाहिए – ट्रिब्यूनल का नहीं। इससे मुकदमों को निपटाना आसान होगा। विश्व व्यापार संगठन हमें मूल्य नियंत्रण से नहीं रोकता है तो एकाधिकार को रोकने के लिए हम मूल्य नियंत्रण का सहारा ले सकते हैं। पेटेंटेड उत्पादों पर रॉयल्टी के लिए या तो कानून में ५ से १० प्रतिशत की सीमा निर्धारित कर दें या फिर यह कर दें कि रॉयल्टी पर फैसला उत्पादन शुरू होने के बाद होगा।

हमारे देश की जनसंख्या काफी है, इसलिए समस्या भी बहुत बड़ी है। दवाएँ न मिलने पर यहाँ कानून व्यवस्था की समस्या खड़ी हो जाएगी और सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि राष्ट्रीयहित न सोचने पर क्या होगा? हमारे यहाँ २२,००० दवा निर्माण इकाईयाँ हैं। ये अपनी दुकानें तो बंद करेंगे नहीं तो चोरी-से नकली दवाएँ बनेंगी।

इससे ट्रिप्स का मूल उद्देश्य काउण्टरफेट दवाओं पर रोक ही खतरे में पड़ जाएगा। जितना कड़ी पेटेंट व्यवस्था होगी उतनी ही ज्यादा संभावना है नकली वस्तुओं के बनने का। अमेरिका एवं भारत के मूल्य में १०० गुना तक का फर्क है। इस प्रकार तस्करी की शृंखला भी तैयार हो सकती है। फैक्ट्रियाँ तो बंद हो नहीं पाएँगी। हाँ, इस तरह का कारोबार शुरू हो जाएगा। आने वाला समय बड़ा अजीब समय होगा। कानून व्यवस्था की समस्या खड़ी हो सकती है। इतने लोगों का रोजगार खत्म होगा तो वे क्या करेंगे – इस बेहद महत्वपूर्ण मुद्दे पर एक गहरी सोच होनी चाहिए। ■

(पृष्ठ १६ का शेष....)

हमारे किसानों को लूटने....

का माल एण्टी डम्पिंग कह कर निकाल दिया है।

यदि नरसिंह राव ने पहले चर्चा किया होता तो आज हमारी स्थिति ऐसी नहीं होती। अगर हम अपने संसाधनों का उपयोग करे तो विश्व व्यापार संगठन का सामना कर सकते है। हमारे पास पशुधन है, २० करोड़ गाय हैं, ८ करोड़ भैंसे हैं और लगभग ४ करोड़ पॉल्ट्री हैं, हमारे पास १०० करोड़ से ज्यादा आवादी हैं। उनका मल फर्टिलाइजर के लिए सबको उपयुक्त है। कॉउ यूरिन के बारे में वेद में भी लिखा गया है, इस तरह हम अपने राष्ट्रीय संसाधन का उपयोग कर सकते है। खर-पतवार से भी कम्पोस्ट बना सकते हैं। कैमीकल फर्टिलाइजर में सिर्फ एन.पी.के. मिलता है, बाकि खरपतवार से ही न्यूट्रीशन प्राप्त होता है। ब्रिटिश वैज्ञानिक डॉ० हारोल्डकर के अनुसार 'भारतीय किसान हमारे गुरु हैं।'

डॉ. स्वामीनाथन के अनुसार हरित क्रांति के दौरान प्रयोग में लागया गया रासायनिक खाद अस्थायी तौर पर प्रयोग किया गया था, उनके अनुसार सस्टेनेबल एग्रीकल्चर के लिए जैविक खाद का ही उपयोग करना पड़ेगा। महाराष्ट्र के एक किसान के अनुसार जिस जमीन में ज्यादा जन्तु है वहाँ उत्पादन अच्छा होगा। कैमीकल फर्टिलाजर जन्तु को मार देता है और जमीन निर्जीव हो जाएगी। इस तरह हम जैविक खाद-प्रयोग करके जमीन की उत्पादक क्षमता को बढ़ा सकते है। इस तरह हम विकसित देश से मुकाबला कर सकते है।

इस तरह देखा जाए तो डब्ल्यू.टी.ओ. के माध्यम से हम आर्थिक गुलामी के पथ पर बढ़ रहे हैं।

लेकिन हम अगर जागृत होंगे तो ऐसी स्थिति नहीं आएगी। अंत में हम तीन चीज बताना चाहेंगे –

१. स्वदेशी बीज का प्रयोग करें क्योंकि अपने बीज के अन्दर जो पोषण है उसे हम तंदुरुस्त रहेंगे।
२. स्वदेशी खाद यानि गो-मूत्र से बना खाद। इससे कम खर्च में ज्यादा उत्पादन होगा।

पारंपरिक खेती यानि ट्रैक्टर आदि मशीन का प्रयोग बंद करना।

इस तरह से देखा जाए तो हमारे ही लोगों ने हमें गुलामी की तरफ ले जाने का काम किया।

३. बॉयो-गैस बनाना जिससे बिजली की आपूर्ति हो सके।

बॉयो-गैस को बोटलिंग करके हम ईंधन के रूप में प्रयोग कर सकते है। इस तरह हम किसान को जागृत करके विश्व व्यापार संगठन का सामना कर सकते है।

केवल हमारे किसान अपने पास उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करें तो हमें विश्व व्यापार संगठन की कोई चिंता नहीं है। ■

Scanned with OKEN Scanner

लेख

धार्मिक ग्लोबलाइजेशन का रास्ता

■ डॉ. भरत झुनझुनवाला

आदरणीय वाजपेयी जी, आपको बधाई है कि आपने वाणिज्य मंत्री मुरासोली मारन के डब्ल्यू.टी.ओ. विरोधी रूख का समर्थन किया है। वर्तमान में अधिकतर

विकासशील देशों के नेता भ्रमित हैं। वे समझ रहे है कि डब्ल्यू.टी.ओ. के नए चक्र से मंदी से उबरने में सहायता मिलेगी। यह सही नहीं है। नए चक्र से मुख्यतः औद्योगिक देशों को लाभ होगा। यह समय है जब आप के कंधों पर नए चक्र को रोकने का दायित्व आता है। नए चक्र को रोक कर आपको विकासशील देशों की जनता को कदाचित उनके ही नेताओं से बचाना होगा।

आप भारत को उपनिवेशवाद के भय से उबार कर विश्व में अपनी ऐतिहासिक भूमिका में पुनर्स्थापित करना चाहते हैं। सिंधु घाटी सभ्यता के समय हमारे व्यापारियों का अरब सागर पर कब्जा था। रोम के साम्राज्य का सोना हमारे व्यापारी घर ले आए। उस ऐतिहासिक परंपरा को हमें अवश्य ही स्थापित करना चाहिए। विश्व से पृथक होने की आवश्यकता नहीं है। परंतु हमें ऐसा ग्लोबलाइजेशन चाहिए जो धार्मिक हो, जिसमें आम आदमी को सकून मिले।

वस्तुस्थिति यह है कि अनेक विकासशील देशों की आय डब्ल्यू. टी.ओ. के बनने के बाद कम हुई है। उक्रेन, थाइलैंड, मलेशिया एवं दक्षिणी अफ्रीका जैसे बड़े देशों की आय में गिरावट आई है। पेरू तथा अर्जन्टीना जैसे देशों का विकास ठप्प है।

वस्तुस्थिति यह है कि अनेक विकासशील देशों की आय डब्ल्यू.टी.ओ. के बनने के बाद कम हुई है। उक्रेन, थाइलैंड, मलेशिया एवं दक्षिणी अफ्रीका जैसे बड़े देशों की आय में गिरावट आई है। पेरू तथा अर्जन्टीना जैसे देशों का विकास ठप्प है। ग्लोबलाइजेशन का उद्देश्य तो आम जनता की आय में सुधार लाना था। बहुधा हो रहा है इसके विपरीत।

कारण यह है कि वर्तमान ग्लोबलाइजेशन एक तरफा हो गया है। हमने ऐसा सोचा था कि मुक्त व्यापार से हम अपने माल का बड़ी मात्रा में निर्यात कर सकेंगे। बदले में हमने पेटेंट आदि की औद्योगिक देशों की मांग को स्वीकार किया था। हमने सोचा था कि पेटेंट से हमें नुकसान कम होगा और खुले व्यापार से लाभ अधिक होगा। परंतु ऐसा नहीं हुआ है। पेटेंट आदि प्रावधानों से हमें नुकसान अधिक हुआ जबकि खुले व्यापार से होने वाला नगण्य रहा। बल्कि यहाँ भी हमें घाटा ही हुआ है।

डब्ल्यू.टी.ओ. के बनने के पहले परिस्थिति यह थी कि औद्योगिक देशों में आयात कर पहले ही न्यून थे। डब्ल्यू.टी.ओ. के अंतर्गत थोड़ी कमी की गई जिसका प्रभाव सीमित रहा। परंतु विकासशील देशों में आयात कर की दरें बहुत ऊँची थी। हम अपने आयात करों को १००-२०० फीसदी से घटा कर ३०-४० फीसदी पर ले आए। इसलिए औद्योगिक देशों का लाभ अधिक और हमें नगण्य हुआ।

हमें जो लाभ हो सकता था उसे भी अनेक प्रकार से रद्द कर दिया गया। औद्योगिक देशों ने डब्ल्यू.टी.ओ. के अंदर उपलब्ध अनेक अस्त्रों का

Scanned with OKEN Scanner

दुरूपयोग किया है। पहला अस्त्र था एण्टी-डम्पिंग ड्यूटी का। हमारे स्टील के निर्यातों ने अमरीका के स्टील उद्योग का भट्ठा बैठा दिया था। उन्होंने उस पर एण्टी-डम्पिंग ड्यूटी लगा दी। हमारे महिलाओं के स्कर्टों को टेलिविजन पर जलता हुआ प्रदर्शित किया गया तथा उनका आयात प्रतिबंधित कर दिया गया। अमरीका, कैनेडा एवं मैक्सिको की तुलना में हमारे माल पर अधिक आयात कर आरोपित हो रहे है। मोस्ट फेवर्डनेशन का हमारा सपना व्यर्थ हो गया है। ऐसा ही यूरोपीय यूनियन ने किया है। कृषि उत्पादों पर लगने वाले आयात करों में औद्योगिक देशों ने केवल २० फीसदी कटौती करना स्वीकार किया था। इसके आगे की कटौती पर उन्होंने कोई आश्वासन नहीं दिया था। इस कटौती को भी दूसरी 'ग्रीन बाक्स' सब्सिडियों के माध्यम से निष्प्रभावी बना दिया गया। विदेश व्यापार के दिल्ली-स्थित सलाहकार अरुण गोयल के अनुसार खुले व्यापार से मिले लाभ की तुलना में इन अस्त्रों के उपयोग से हमें नुकसान अधिक हुआ है। यानी खुले व्यापार का भी हमें कोई लाभ नहीं मिला है।

अंतिम नतीजा यह रहा हक पेटेंट से हमें नुकसान होना था सो हुआ ही, खुले व्यापार से होने वाला लाभ भी हमारे हाथों से निकल गया। विकासशील देशों की परिस्थिति सुधरने के स्थान पर बिगड़ती चली गई। हाँ यह लाभ अवश्य हुआ कि खुले व्यापार के दवाव में हमारे घरेलू उद्योगों को अपनी कमर कसनी पड़ी। परंतु यह तो वैसे भी घरेलू शासन के सरलीकरण से हो ही रहा था। जो मामूली सुधार अपने उद्योगों से हुआ है उसके पीछे शासन में सुधार की भूमिका अधिक है और डब्ल्यू.टी.ओ. की कम।

इस पृष्ठ भूमि में हमें दोहा में नए चक्र को शुरू करने पर विचार करना चाहिए। यूँ तो कहा जा रहा है कि उद्देश्य व्यापार को और अधिक खोलने का है। परंतु आयात करों में और कटौती केवल विकासशील देशों में ही संभव है। औद्योगिक देशों ने अपने बाजारों का हमारे आयातों से बचाने के लिए आयात करों का नहीं बल्कि दूसरे अस्त्रों का उपयोग करना चालू कर दिया है। अतः व्यापार को और खोलने का अर्थ सिर्फ यह रहा जाता है कि विकासशील देशों के बाजार को और खोल दिया जाए।

दूसरी तरफ पेटेंट जैसे नए एकाधिकारों को स्थापित करने का एजेण्डा है। श्रम तथा पर्यावरण मानकों को लागू करने की मांग की जा रही है। इनके माध्यम से हमारे निर्यातों को रोका जा सकता है। सरकारी खरीद को अंतर्राष्ट्रीय व्यापारियों के लिए खोलने की मांग की जा रही है। भारत सरकार के लिए एम्बैसडर कार अथवा देश में हस्तनिर्मित कागज की फाइलें खरीदना असंभव हो जाएगा। निवेश को खोलने की मांग है जिससे हमारी सरकार घरेलू उद्योगों को तनिक भी संरक्षण नहीं दे सकेगी। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपनी पेटेंटकृीत तकनीकों के सहारे हमारे देश में मोनोपाली स्थापित कर सकेंगी।

नए चक्र का अंतिम परिणाम एक ही हो सकता है। विकासशील देश अपने बाजार को औद्योगिक देशों के लिए खोल दें और औद्योगिक देश अपने एकाधिकारों को और मजबूत बना ले। यह एक तरफा ग्लोबलाइजेशन होगा। डब्ल्यू.टी.ओ. के प्रथम सत्र के जो दुष्परिणाम सामने आए हैं वे गहराएँगे। हमें नए चक्र का विरोध करना चाहिए। जिस प्रकार आपने पूरे विश्व की गलत धारणा का अकेले विरोध करते हुए पोखरण विस्फोट का कदम उठाया उसी प्रकार पूरे विश्व के एक मत के विरोध में हमें दोहा में नए चक्र को शुरू करने का विरोध करना चाहिए। ज्ञातव्य है कि डब्ल्यू.टी.ओ. के नियमों के अनुसार नए चक्र को शुरू करने के लिए सभी सदस्य देशों की सहमति आवश्यक है। अतः हम अकेले ही इसे रोक सकते हैं।

प्रश्न उठता है कि यदि डब्ल्यू.टी.ओ. का चरित्र इतना नकारात्मक है तो तमाम विकासशील देश नए चक्र का समर्थन क्यों कर रहे हैं। इसका मुख्य कारण है नासमझी। पश्चिमी देश हमारे देश के विद्वानों को अनुदान आदि देकर खरीद लेते हैं। वे उन्हीं की राग अलापने लगते है। दूसरा कारण है विकासशील देशों में भ्रष्ट अथवा निकम्मी सरकारों का सत्तारूढ़ होना। चीन का उदाहरण लें। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी एवं विकराल नौकरशाही में भयंकर भ्रष्टाचार व्याप्त है। उनके देश की जनता कठिनाई में है। चीन के सामने एक रास्ता यह है कि अपने कुशासन को ठीक करे। दूसरा यह है कि अपने कुशासन से जनित समस्याओं को ढकने के लिए विदेशी निवेश का सहारा ले। हमें भूलना नहीं चाहिए कि मलेशिया ने ग्लोबलाइजेशन को सर्वाधिक जोर-शोर से अपनाया था। आज पूर्वी एशिया के देशों में मलेशिया ही ग्लोबलाइजेशन के विरुद्ध सर्वाधिक आवाज उठा रहा है। उसकी समस्या यह है कि वह ग्लोबलाइजेशन के दलदल में इतना धँस चुका है कि न तो ग्लोबलाइजेशन निगलते बनता है न उगलते। पश्चिमी एशिया तथा अन्य देशों की सरकारें औद्योगिक देशों पर सैन्य सहायता के लिए भी निर्भर है। साऊदी अरब के राजघराने के बिन तलाल विश्व के छटे नंबर के अमीर है। इन्होंने अपनी व्यक्तिगत संपत्ति को न्यूयार्क के फोर सीजन्य, पीयरी तथा प्लाजा होटलों में लगा रखा है। साक्स तथा टाइम वार्नर जैसी कंपनियों में इनके भारी निवेश हैं। ऐसी स्थिति में साऊदी राजघराने के लिए संभव नहीं है कि अमरीका के खिलाफ कोई कदम उठाए। परंतु हमें धर्म का समर्थन करना चाहिए। विश्व के दरिद्रनारायण की सेवा करनी चाहिए। दूसरे देशों के नेताओं के नए चक्र के समर्थन के अधर्म का अंधानुकरण नहीं करना चाहिए।

हमारी नीति के दो अंग होने चाहिए। पहला यह कि डब्ल्यू.टी.ओ. के पिछले समझौते से अपेक्षित लाभ न होने के कारणों को दूर किया जाए। यह केवल कार्यान्वयन का मामला नहीं है। यदि पिछले समझौते में औद्योगिक देशों द्वारा कृषि सब्सिडी में मात्र २० फीसदी की कटौती की गई थी तो पहले उसे बढ़ाया जाना चाहिए। यदि पेटेंट का नियम हमारी जनता को सस्ती दवा मिलने में बाधक है तो उसे ढीला किया जाना चाहिए। दूसरे नए चक्र की आवश्यकता नए मुद्दों को सम्मलित करने के लिए ही है। अतः नए चक्र का विरोध करना चाहिए। वाजपेई जी, आपसे प्रार्थना है कि विश्व के धार्मिक नेता बनिए। विकासशील देशों की अधार्मिक सरकारों के साथ कदम मिलाकर न चलिए। अकेले नए चक्र का विरोध करके विश्व के दरिद्रनारायण को राहत पहुँचाईए। ■

Scanned with OKEN Scanner

यह जंग खाने-पीने की चीजों यानि खाद्य पदार्थों पर एकाधिकार जमाने की है। आतंकवाद की लड़ाई की ही तरह यह जंग भी लंबे वक्त तक लड़ी जानी है। दुनिया के व्यापार मोर्चों पर इस जंग की तैयारी शुरू हो गई है। अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं की मदद से इस लड़ाई की कोई मामूली तैयारी नहीं है।

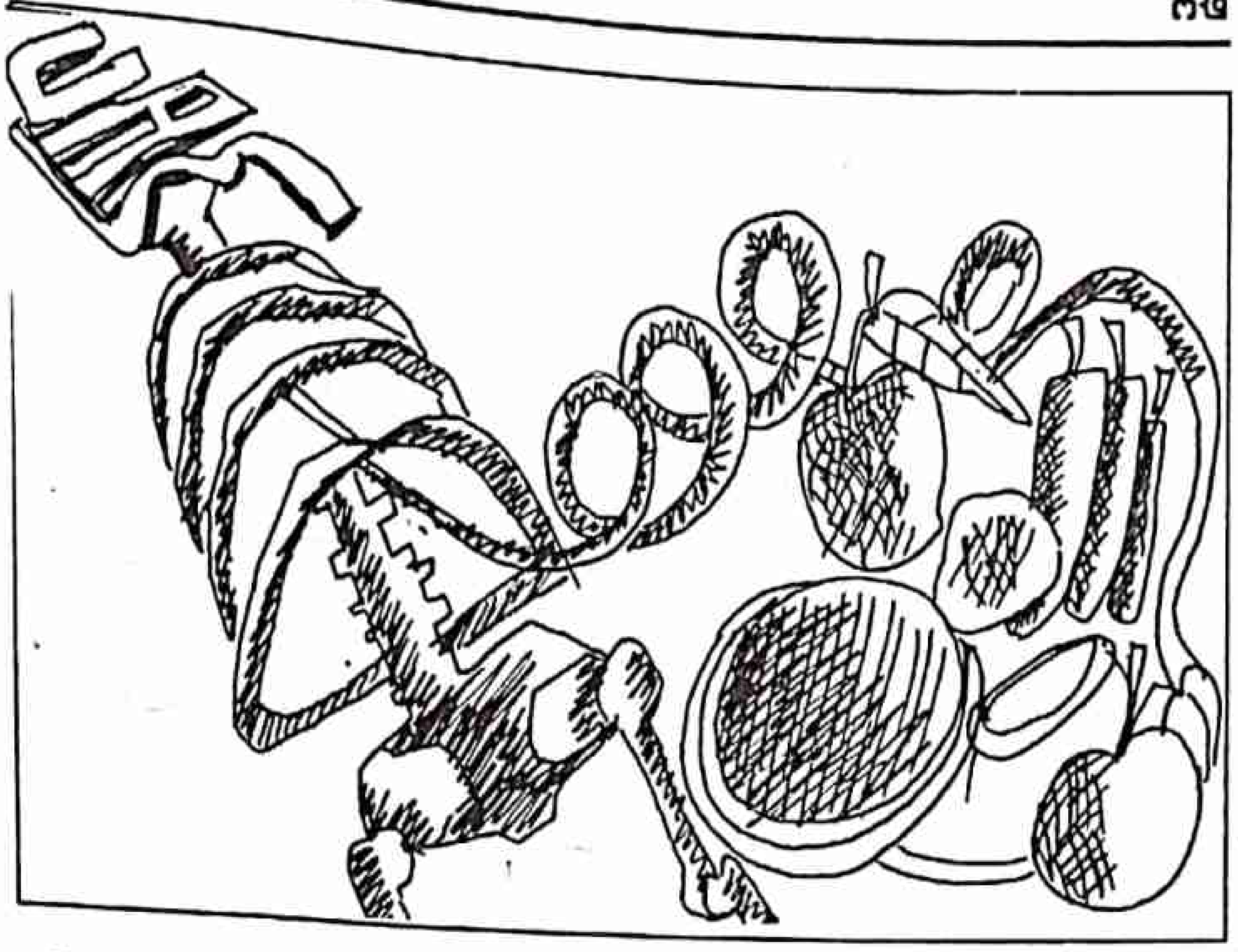

खाद्य पदार्थों पर एकाधिकार की अमरीकी भूख

■ देवेन्द्र शर्मा

अमेरिका और उसके सहयोगी अफगानिस्तान में ही लड़ाई नहीं लड़ रहे हैं। वह एक और किस्म की जंग भी लड़ रहे हैं। यह जंग खाने-पीने की चीजों यानी खाद्य पदार्थों पर एकाधिकार जमाने की है। आतंकवाद की लड़ाई की ही तरह यह जंग भी लंबे वक्त तक लड़ी जानी है। दुनिया के व्यापार मोर्चों पर इस जंग की तैयारी शुरू हो गई है। अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं की मदद से इस लड़ाई की कोई मामूली तैयारी नहीं है।

दरअसल, अमेरिका, यूरोपीय संघ और केंस ग्रुप मिलकर इस मामले में दुनिया के सबसे बड़े निर्यातक बन गए हैं। इसी वजह से विकासशील देशों के डेढ़ अरब से भी ज्यादा छोटे और हाशिए पर पड़े हुए किसानों का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है। अब खाने-पीने की चीजें आने वाले समय में बहुत बड़ा हथियार बनने जा रही हैं। इसीलिए दुनिया की बड़ी तादाद अपने लिए एक बड़ा खतरा महसूस कर रही है। उनकी आर्थिक आजादी चौपट होने जा रही है। इस सभ्यताओं की लड़ाई में कुल मिलाकर विकसित और विकासशील देशों की जंग होने जा रही है। औद्योगिक खेतीबाड़ी और खाद्य सुरक्षा व मूल्य आधारित खाद्य और बढ़ती भूख में यह लड़ाई है। इस लड़ाई को जीतने के लिए अमेरिका हर किस्म के हथकंडे अपना रहा है। बाँह मरोड़ने से लेकर भौंह तरेरने तक वह सब कुछ कर रहा है।

हाल के वक्त में अमेरिका ने श्रीलंका, मैक्सिको और थाईलैण्ड पर आर्थिक प्रतिबंध लगाने की चेतावनी दी है। वह नहीं चाहता कि ये देश खास किस्म के खाद्यान्न और फसलों के आयात पर पाबंदी लगाएँ या उस पर कुछ नियंत्रण लगाएँ। अब वह चीन को धमकी दे रहा है। सोयाबीन के आयात पर पाबंदी को लेकर अमेरिका गुर्रा रहा है। इस तरह से सोयाबीन पर पाबंदी से अमेरिका की सोयाबीन लॉबी को लगभग एक अरब डॉलर के निर्यात का नुकसान हो सकता है। देखभाल और रोक-रोक कर उठाने वाले कदमों से अमेरिका बौखला जाता है। उसका कहना है कि विश्व व्यापार संगठन के सदस्य के नाते ऐसा करना ठीक नहीं होगा।

हाल के वक्त में अमेरिका ने श्रीलंका, मैक्सिको और थाईलैण्ड पर आर्थिक प्रतिबंध लगाने की चेतावनी दी है। वह नहीं चाहता कि ये देश खास किस्म के खाद्यान्न और फसलों के आयात पर पाबंदी लगाएँ या उस पर कुछ नियंत्रण लगाएँ।

अमेरिका और यूरोपीय संघ कृषि और खाद्य के मामले में दुनियाभर के व्यापार का ३५ फीसदी हिस्सा रखते हैं। केंस ग्रुप के साथ ये कृषि में एक तिहाई के हिस्सेदार हैं। इस ग्रुप में १८ खाने-पीने की चीजों को निर्यात करने वाले देश हैं। दो तिहाई खानपान के व्यापार का हिस्सा इन तीनों के पास है। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन यानी ओइसीडी दुनिया का सबसे अमीर व्यापारिक ब्लॉक है। अगर इसके कुछ बचे हुए सदस्यों को जोड़ दें, तो कृषि और खाद्य व्यापार में

Scanned with OKEN Scanner

इन सबका पूरा अधिकार ही हो जाता है।

लेकिन खाद्य पदार्थों के जबर्दस्त उत्पादन के बावजूद ये देश विकासशील देशों पर मनचाहा दबाव नहीं डाल पा रहे हैं। इसीलिए उन्हें अपने सब्सिडी उत्पादों को 'डंप' करना पड़ रहा है। इन देशों का तब तक कोई फायदा नहीं होने वाला, जब तक दुनियाभर में व्यापार के नियम उनके लिहाज से बदल नहीं जाते। विश्व व्यापार संगठन की कृषि को लेकर तोड़-मरोड़, उठा-पटक इसी साजिश का हिस्सा है। दुनिया दोहा की ओर देख रही है। वहाँ कृषि को लेकर और साजिश हुई है। मकसद यही कि दुनिया भर में इन देशों का जैसे भी हो एकाधिकार हो सके।

विश्व बाजार में बदलाव और खुलापन कुल मिलाकर अमेरिका को फायदा पहुँचा रहा है। पिछले १५ साल में उसका निर्यात दोगुना हो गया है। इस साल ५३.३ अरब डॉलर के निर्यात का अनुमान है। यूरोपीय संघ ने दूसरी ओर अपना निर्यात १३.५ से १५ प्रतिशत तक बढ़ा लिया है। इसके बावजूद ये गुट खुश नहीं हैं। वह विश्व व्यापार संगठन की आड़ में विकासशील देशों पर सब्सिडी खत्म करने और व्यापार नियंत्रण और पाबंदी हटाने के लिए दबाव डाल रहा है। ताकि अमेरिका और उसके सहयोगी खाद्य मामले में अपनी मनमानी कर सकें। और इस मसले पर वे आखिरी हमला करने को उतारू हो गए हैं।

अमेरिका अब एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया में ६० करोड़ नए उपभोक्ता पर नजर गड़ाए हैं। उसे दक्षिण और मध्य अमेरिका में ४० करोड़ उपभोक्ता नजर आ रहे हैं। दरअसल, वह इन देशों के एक अरब उपभोक्ताओं यानी मध्यवर्ग को सबकुछ देना चाहता है। इसका सबसे बुरा असर स्थानीय किसानों और उत्पादकों पर पड़ेगा। उनकी जिंदगी उसी पर चल रही है। वे बर्बादी की तरफ बढ़ जाएँगे। एक बार ये देश अमेरिका पर निर्भर हो गए, तो अमेरिका इस लड़ाई को जीत लेगा। इस तरह का पूरा एकाधिकार जबर्दस्त वित्तीय सहायता के बगैर नहीं हो सकता। इसीलिए अमेरिका अपने किसानों को हर साल ५४ अरब डॉलर की सब्सिडी देता है। वहीं यूरोपीय संघ ने १९९९ में अपने उत्पादकों को ११४.५ अरब डॉलर की सब्सिडी दी। ओइसीडी अपने किसानों को एक अरब डॉलर हर दिन के हिसाब से किसी न किसी तरह मदद करता है। विश्व व्यापार संगठन के मुताबिक अमेरिका को सब्सिडी खत्म करने की ओर बढ़ना चाहिए था। लेकिन वह सब्सिडी देने के मामले में दुनिया का लीडर हो गया है। बौद्धिक संपदा अधिकार को अपने हिसाब से सिकोड़ कर अमेरिका अब खेतीबाड़ी के रिसर्च पर भी अपना सिक्का जमाने की कोशिश में है। अमेरिका और यूरोपीय संघ भी आपस में कभी-कभी भिड़े नजर आते हैं। एक-दूसरे को कोसते रहते हैं। यह एक अलग मसला है। लेकिन असलियत में दोनों की नीतियाँ सब्सिडी बढ़ाने की है। खेतीबाड़ी के मामले में मिलने वाली सब्सिडी बाजार को बिगाड़ती हैं और बेवजह जमीन के दाम बढ़ने लगते हैं। इसीलिए औद्योगिक देशों को सब्सिडी घटाने की ओर कदम उठाने चाहिए। लेकिन अमेरिका सबको धता बता कर सब्सिडी बढ़ाने में मशगूल है। यूरोपीय संघ भी यही कर रहा है। कोई संकेत नहीं है कि कृषि मामले में सब्सिडी खत्म करने की ओर ये बढ़ रहे हैं। इतना ही नहीं, एक नया कृषि विधेयक अमेरिकी काँग्रेस के सामने है। उसमें अगले दस साल में १७० अरब डॉलर कृषि क्षेत्र को मदद देने की बात है। दूसरी ओर यूरोपीय संघ है। वह खुले बाजार का दावा और वादा करता है। लेकिन समान कृषि नीति को चला कर वह अपने कृषि क्षेत्र को पूरी तरह से बचा कर भी रखता है। यह उनकी दोगली नीति है। ये चाहते हैं कि विकासशील देश अपनी अर्थव्यवस्था या बाजार को खोल दें, लेकिन इनका कृषि क्षेत्र दुनिया में सबसे ज्यादा सब्सिडी वाला बना रहे।

डॉलर के लिए डॉलर। अमेरिका स्टील से ज्यादा मांस-मीट, कॉसमेटिक्स से ज्यादा मक्का, कोयले से ज्यादा गेहूँ, मोटरकार से ज्यादा बेकरी उत्पाद, घरेलू उपकरणों से ज्यादा फल और सब्जियों का निर्यात करता है। यह कहना है मैटी शार्पलेस का। वह अमेरिका के कृषि विभाग की विदेश सेवा की कार्यकारी प्रशासक हैं। उन्होंने यह खुलासा हाल ही में अमेरिका की सीनेट के सामने किया था। उनका यह भी कहना था कि अमेरिका का कृषि क्षेत्र लगातार उनके व्यापार में 'सरप्लस' दे रहा है। निर्यात के मामले में अमेरिका ने इस साल कुछ लक्ष्य तय किए हैं। एक निगाह डालिए। गेहूं के लिए ५३ प्रतिशत, कॉटन के लिए ४७ प्रतिशत, चावल के लिए ४२ प्रतिशत, सोयाबीन ३५ प्रतिशत और मक्का २१ प्रतिशत होगा। जाहिर है ये सब भारी सब्सिडी से ही मुमकिन हो सकता है। और विकासशील देशों की व्यापार पाबंदियों को हटाने से ही ऐसा करने में आसानी होगी।

विश्व व्यापार संगठन की कृषि पर जो सहमति बनी हैं, उसके मुताबिक विकासशील देशों को जबरदस्ती अपनी सब्सिडियाँ घटानी हैं। यह संगठन अपनी एक धारा के तहत कुल दस प्रतिशत सब्सिडी से ज्यादा को ठीक नहीं मानता। इसी के तहत ज्यादातर विकासशील देशों ने कृषि क्षेत्र में पूरी तरह सब्सिडी हटाने की शुरुआत कर दी है। उन्होंने कृषि विस्तार व्यवस्था को भी खत्म कर दिया है। भारत अपने कृषि क्षेत्र को एक अरब डॉलर की सब्सिडी देता है। वह सब्सिडी हटाने को तुल गया है। यही नहीं, वह अपनी सार्वजनिक वितरण प्रणाली या राशन व्यवस्था को भी धीरे-धीरे खत्म करने में लगा है। अमेरिका ने दवाब डालकर व्यापार पाबंदियों को हटवाया है। और ऐसा विश्व व्यापार संगठन के तय समय से दो साल पहले ही हो गया है। ये सब विकासशील देशों को किधर ले जाएगा? जाहिर है अपना देश भी इसी में शामिल है। जवाब एकदम सीधा और सरल है। खाद्य मामले में कुछ देशों के एकाधिकार की साजिश है। व्यापार के नियम उनके लिहाज से बनाए-बिगाड़े या तोड़े-मरोड़े जा रहे हैं। विकासशील देश कुल मिलाकर खाने-पीने की चीजों के 'डंप' बनते जा रहे हैं। इसी समय यह भी बताया जा रहा है कि अब प्रिसीजन यानी हाइटेक खेती-बाड़ी की जरूरत है। यही पर्यावरण के लिहाज से अकेला तरीका है। और इसी तरीके से खेती-बाड़ी दुनियाभर में हो सकती है। उनकी कुल मिलाकर साजिश यह है कि विकासशील देश अपने-अपने खेती-बाड़ी के तरीके छोड़ दें। इस मामले में वे आत्मनिर्भर न रहें। या विश्व व्यापार के लिए अपनी आत्मनिर्भरता की बलि चढ़ा दें। अगर ऐसा होता है, तो यह दुनिया के लिए बहुत बड़ी ट्रेजडी होगी।■

Scanned with OKEN Scanner

शोधन

स्वदेशी के साथ धर्म व्यापक अर्थ में जुड़ा हुआ है

■ विद्यानिवास मिश्र

स्वदेशी में जो देशी की कल्पना है यह केवल इतिहासकी ना नहीं है। यह कल्पना कुछ विचारों की है जो विचार हमें चीजों का ध्यान दिलाते हैं।

पहला, जीवन की विविधता पर। हर क्षेत्र की अपनी एक अलग षता होती है, अलग रंगत होती है, अलग कलाएँ होती है, अलग टी होती है, अलग नदियाँ, पर्वत होते हैं, – इन्हीं विशेषताओं पहचान है स्वदेशी।

दूसरा, 'स्वावलम्बन' पर। स्वावलम्बन केवल अपने लिए ही ं, बल्कि हम आत्मनिर्भर हों। इसके लावा हम इतना और पैदा कर सकें कि पने बल पर दूसरों की सहायता कर कें। दूसरों को आत्मनिर्भर बनाने में हम सहयोग दे सकें। यह इस देश के स्कार में था और अभी भी इस देश के वोत्तर भाग में है। वहाँ लड़कियाँ अपनी ादी के लिए मेंखला स्वयं बुनती है। इस ाम में समय ज्यादा लगता है। उस समय ो हम नापें उस समय के साथ-साथ नुष्य का जो श्रम लगता है उस श्रम के ाथ मनुष्य का जो मन लगता है। उसे मझें। उसकी कोई कीमत नहीं आँकी जा सकती। हमारा देश उस कीमत को समझता रहा है। पंजाब के घरों में पुरानी से पुरानी ऐसी वस्तुएँ पड़ी रहती है। स्त्रियाँ उन्हें इस भाव से रखती हैं कि "इसे हमारी सास ने हमें धरोहर में दी थी। यह चीज हमारी सास की शादी में आयी थी और वे अपने को इसके लिए गौरवशाली समझती है। वह अपनी परम्परागत कला को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखती है। क्योंकि वह आगे बढ़ने की प्रेरणा देती हैं। यह विविधता जीवन की शैली में, शिल्प में, कला में, वस्तुओं में, औषधियों में, औषधियों के प्रयोग में रहनी चाहिए। यह स्वदेशी का एक प्रमुख लक्षण है।

> **स्वदेशी के साथ जो संबंध होता है वह रुपया या पाई का नहीं होता कि ये चीज इतने में मिलती हैं, इतने में मिल सकती थी। स्वदेशी के साथ एक भावना जुड़ी हुई है। अपनी जमीन के साथ, जमीन पर रहने वालों के साथ – एक भावना जुड़ी हुई है। भावना जब मिटने लगती है तो लोग अपने जड़ से उखड़ने लगते है।**

तीसरा, स्वदेशी की भावना। यह भावना हम अपने भीतर रखते हैं तो दूसरे देश के प्रति घृणा नहीं होती। बल्कि दूसरे देश में भी यदि स्वदेशी भावना है तो आदर हम उसका भी करते हैं। दूसरे देश में अपने देश के गौरव का सम्मान है तो हम उसका सम्मान करते हैं। जैसे हम अपनी माँ को हम प्यार करते हैं और दूसरा व्यक्ति अपनी माँ को प्यार करता है तो इस बात को हम समझते है। तो स्वदेशी का अर्थ ही यही होता है कि जो भी अपने देश की संस्कृति के साथ जुड़ता है, उसका हम सम्मान करते है। हम इस अद्वयतता को स्वीकार करते हैं। अपनी बात हम उन पर थोपते नहीं हैं। हम यह नहीं कहते है कि हमारे पास ही एक मात्र सत्य के धरोहर है, हमीं उसके ठेकेदार है, एक मात्र हमारी बात ही सच है, ऐसा नहीं कहते। हमारी परिस्थितियों में, हमारे देश की जलवायु में, हमारे देश की परम्परागत आचरण में कुछ चीजें हैं, जो भी इसके अनुकूल है, हम उसे स्वीकार करते हैं। बराबर इस पर बल दिया गया है। जिस देश में जो औषधि होती है वहाँ के रोगों के लिए वह सर्वोत्तम दवा होती है और इसकी पहचान हमारे यहाँ अनपढ़ और अशिक्षित लोगों को भी होती है। औषधियों की ओर भी लोगों का ध्यान जा रहा है। वे चाहते हैं कि जो ज्ञान एक जंगल में रहने वाले वन्य-जन के पास है वह हमारा हो जाए, उनकी बौद्धिक सम्पदा हम हथिया लें। लेकिन यह ज्ञान दूसरों का नहीं हो सकता। क्योंकि यह ज्ञान जीवन के घने अनुभव से आता है। एक अच्छे उद्देश्य से आता है। उस ज्ञान की कीमत नहीं लगायी जा सकती। वन में रहने वाले व्यक्ति के पास जो ज्ञान है उसके उपयोग के लिए वह कोई फीस नहीं लेता। उसका कोई पेटेंट नहीं है वह जो जानता है उसका उपयोग करता है। क्योंकि वह जानता है कि भगवान ने उसे जितनी सीख दी है, जितनी

समझदारी दी है, उसका लाभ दूसरों को मिलना चाहिए – नहीं तो अधर्म होगा। इसे स्वदेशी के लक्षण के रूप में माना जा सकता है।

स्वदेशी के साथ जो संबंध होता है वह रुपया या पाई का नहीं होता कि ये चीज इतने में मिलती हैं, इतने में मिल सकती थी। स्वदेशी के साथ एक भावना जुड़ी हुई है। अपनी जमीन के साथ, जमीन पर रहने वालों के साथ – एक भावना जुड़ी हुई है। भावना जब मिटने लगती है तो लोग अपने जड़ से उखड़ने लगते है। जैसे कि आज लोग उखड़ रहे हैं। ऐसे लोगों के लिए कोई जगह नहीं होती, ऐसे लोग बड़े गहरे संताप में हमेशा फँसे रहते हैं। अभी-अभी जिसको नोबल पुरस्कार मिला है विद्याधर नागपाल को उस व्यक्ति की यही समस्या है कि उसके पुरखे यहाँ से गये। उसकी पढ़ाई इंग्लैण्ड में हुई। उसकी कौन-सा देश है, उसकी कौन-सी भाषा है, उसकी कौन-सी जड़ है, यही खोजने में उसकी उम्र बीत गयी है और आज भी वह एक भयंकर अंतर्द्वंद्व का शिकार है। इसी अंतर्द्वंद्व की अभिव्यक्ति उसकी महान रचनाओं में है। यह अंतर्द्वंद्व होता किस लिए हैं? इसे समझने के लिए मैं एक छोटी-सी घटना सुनाता हूँ। मैं एक बार विदेश से लौट रहा था। हमें पहले कराची ले जाया गया। उस समय कराची हवाई अड्डे पर १०-२० लोग गोवा के भी रुके थे। हिन्दुस्तानी लोगों को अलग कर एक जगह रख दिया गया कि किसी तरह का संघर्ष ना हों। वहाँ पानी पीने की व्यवस्था भी नहीं थी। किसी को नाश्ता नहीं, नहाने की जगह नहीं। एक बड़ी विषम परिस्थिति थी। एक भाई पाकिस्तान एयरवेज से ही आए हुए थे। उन्होंने सीधे पूछा, लगता है आप बनारस आसपास के रहने वाले है। मैंने कहा – हाँ। उन्होंने कहा, मैं भी गाजीपुर का हूँ। वह मुझे अपने साथ ले गए। मुझे नहलाया, धुलाया और जब तक मैं हवाई जहाज पर चढ़ा नहीं तब तक वे साथ रहे चलते-चलते उन्होंने कहा कि मुल्क कोई भी हो वतन तो वतन होता है। यह जो जन्मभूमि का संस्कार है वतन का संस्कार है। अपनी जन्मभूमि अपने पितरों की जन्मभूमि से बड़ा गहरा लगाव होता है। इसे मिटाने की बराबर कोशिश हो रही है। खास कर ऐसे देश में यह कोशिश हो रही है जहाँ कोई जड़ नहीं है। जो जड़हीनों का ही देश है। वहीं ज्यादा कोशिशें हो रही हैं। जैसाकि ठेंगड़ी जी ने कहा, (अमेरिका के संदर्भ में) वह एक ऐसी ढ़ाल पर है कि वह वहाँ से निरंतर नीचे जा रहा है। आर्थिक दृष्टि से नीचे जा रहा है, सामरिक दृष्टि से नीचे जा रहा है। क्योंकि हथियारों से केवल आदमी नहीं लड़ता है, भीतर के आत्मबल से लड़ता है। उसमें आत्मबल की कितनी कमी है, यह हम देख चुके हैं, और आज भी देख रहे हैं कि एक छोटे-से देश के ऊपर काबू पाने में इतने दिन लग गए। मेरा अनुमान है, अभी तक ५,००० अरब डॉलर लग गए होंगे। इनके देश का मनोबल गिरा है और भय की भाषा में बोल रहे है। धौंस जमा रहे है। स्वयं भयभीत हैं। पशु के एक रोग से हर आदमी भयभीत है, आतंक मचा हुआ है। उनके मुकाबले कितना अधिक आतंक हिन्दुस्तान निरंतर झेलता रहा है और अपने बल पर टिका हुआ है। इसकी जमीन में कोई तासीर है और इसी तासीर को समझना ही मूल धर्म है।

यह कैसा तासीर है, जिससे हम टीके रहे और टिके ही नहीं रहे है हम अपनी अस्मिता कायम रखे हुए है? हमारे देश से कुली बनकर गए हुए लोग टिके रहे दूसरे लोग छिप गए। उनका धर्म परिवर्तन हुआ, स्वभाव परिवर्तन हुआ। सबकुछ परिवर्तन गया। लेकिन, इस देश के अशिक्षित लोग गए और रामचारित मानस के बल पर टिके रहे। कोड़े खाए, लेकिन उस देश को हरा-भरा किया, सम्पन्न किया, स्वतंत्र किया।

यह कैसा तासीर है, जिससे हम टीके रहे और टिके ही नहीं रहे है हम अपनी अस्मिता कायम रखे हुए है? हमारे देश से कुली बनकर गए हुए लोग टिके रहे दूसरे लोग छिप गए। उनका धर्म परिवर्तन हुआ, स्वभाव परिवर्तन हुआ। सबकुछ परिवर्तन गया। लेकिन, इस देश के अशिक्षित लोग गए और रामचारित मानस के बल पर टिके रहे। कोड़े खाए, लेकिन उस देश को हरा-भरा किया, सम्पन्न किया, स्वतंत्र किया। देश क्या विदेश को भी स्वतंत्र कराने में भारतीय मूल लोगों ने भूमिका निभायी। मारिशस हो या त्रिनिदाद, गुयायना। आप इन देशों का उदाहरण ले सकते है यहाँ के दूसरे लोग स्वतंत्र होना नहीं चाहते थे। भारत मूल के लोगों ने आन्दोलन किया। उन्हीं के आन्दोलन से ये देश स्वतंत्र हुए। इसमें उनके स्वदेश की प्रेरणा थी, अपने स्थान की प्रेरणा थी। उनमें अपने विवेक को प्रयोग करने की छूट थी, अपने विवेक से कार्य करने की प्रेरणा थी। विदेशों में रहते हुए उन्होंने अपनी जड़ों को भी पहचाना और उनका उस देश के साथ एक अलग लगाव भी हुआ। यह संभव भी तब हुआ जब वे सभी अपनी जमीन से काफी जुड़े थे, रामकथा से जुड़े थे। इसलिए मैं आप सभी से बड़ी विनम्रता से निवेदन करता हूँ कि स्वदेशी के साथ व्यापक अर्थ में धर्म जुड़ा हुआ है। एक धर्म का भाव जुड़ा हुआ है, यह कि हम जो वस्त्र पहनेंगे वह माँ के हाथ का काता हुआ है। उसमें पवित्रता है जो हमारे पास अमुक सामान है, उसमें पवित्रता है। यह धर्म की भावना है। हमारे लिए घर केवल रहने का स्थान नहीं, हमारी संस्कृति का अधिष्ठान है। यह एक तरह से पूरे ब्रह्माण्ड का एक अलग चित्र है। इससे हमारा संबंध धार्मिक है। धार्मिक का अर्थ विश्वास के अर्थ में नहीं कह रहा। यह हमारे लिए जीवन की मूल प्रेरणा के रूप में है। इसलिए हम बार-बार घर लौटते हैं। रहते बाहर हैं लेकिन लौटते हैं बार-बार घर। घर की भावना हमें सुरक्षा प्रदान करती है। इतना बड़ा घर है

Scanned with OKEN Scanner

से लेकर कन्याकुमारी तक। हिमालय की लम्बी बाँहें ह हिमालय से पश्चिम तक। इतनी बड़ी बाँहें कि ये दोनों सागर को ।, पूरब से पश्चिम तक। इतनी बड़ी बाँहें कि ये दोनों सागर को सम्हालते हैं। यह देश तीन महासागरों को सम्हालता है। यह हमारा र हैं बहुत बड़ा घर है। छोटा घर नहीं है। इस बड़े घर के साथ हमारा जो संबंध होता है, वह एक धार्मिक संबंध है। यह संबंध बड़ी गहरी भावना से जुड़ा हुआ है। इस संबंध के नाते जब स्वदेशी का ध्यान करते हैं तो रुपया, पैसा, आना, पाई का हिसाब नहीं लगाते। हम हिसाब लगाते है इस रूप में कि हमारी आत्मा के अनुकूल क्या है, हमारे अनुरूप वस्त्र कौन-सा है, कौन-सा परिधान है, कौन-सा भोजन हमारे अनुकूल है, किस प्रकार का रहन-सहन हमारे लिए अनुकूल है, किस प्रकार का प्रकाश हमारे अनुकूल है। आज हमारा मकान आँगन रहित, बरामदा रहित – हमारे जलवायु के बिल्कुल प्रतिकूल हो गए हैं।

स्वदेशी एक बड़ी व्यापक अवधारणा है जो केवल वस्त्र और सामान तक सीमित नहीं है, यह जीवन के प्रत्येक व्यवहार का स्पर्श करती है, यह जीवन में हमारे विभिन्न पदार्थों के प्रति, व्यवहार के रुझान से संबंधित होती है, उसमें स्वदेशी दिखाई पड़ती है। स्वदेशी केवल वस्त्र में नहीं दिखाई पड़ती है, स्वदेशी केवल नारों में नहीं दिखाई पड़ती है। स्वदेशी भीतर की चेतना में रहती है। स्वदेशी की चेतना का एक उदाहरण हम देते हैं। १९३५ में जब प्रदेशों नया मंत्रीमंडल बना। राजा जी मद्रास के मुख्यमंत्री थे, उन्होंने हिन्दी अनिवार्य की तब टंडन जी गाँधी जी के पास विरोध व्यक्त करने गए – राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन। उन्होंने कहा, यह हमारे देश की प्रकृति के अनुकूल नहीं है, जिन्होंने हिन्दी का विरोध किया है उनको जेल नहीं भेजना चाहिए। यह अँग्रेजी की प्रकृति है, अँग्रेजी शासन की प्रकृति है, हिन्दी भाषा की - हिन्दुस्तान के स्वभाव की बात नहीं है। हिन्दुस्तान का स्वभाव प्रेम से लोगों को अपनी ओर जोड़ना है। हमारे देश की प्रकृति तलवार के बल पर, आतंक के बल पर परिवर्तन नहीं लाती है। प्रेम के संदेश से उसने हिन्देशिया में, दक्षिण-पूर्व एशिया में, मध्य एशिया में अपनी संस्कृति के संदेश को भेजा। कहीं विजेता होकर नहीं, कहीं उपनिवेश बनाकर नहीं, केवल सबसे साझेदारी की माँग करके सबको साझेदारी देकर किया। हमारे देश का यही स्वभाव है। इस स्वदेशी की अवधारणा में इतनी व्यापकता है, इतनी गहराई है। यह बात भी आप लोग जो स्वदेशी के जागरण से जुड़े हुए है अपने मन में रखें। इसको नापने न चलें कि इसमें इतना घाटा है, इतना फायदा है, इसमें व्यर्थ का श्रम जा रहा है। क्या यह श्रम व्यर्थ है, इतने मनुष्य का मनोयोग व्यर्थ है? यह कैसी बात है। ऐसा प्रयत्न जिसमें इतने लोग एक साथ किसी एक शिल्प में लगे रहते हैं और उस शिल्प में न जाने कितना बड़ा इतिहास मिलता रहता है, यह कैसे व्यर्थ है?

करोड़ से अधिक आदमी गंगा के किनारे केवल चार-पाँच वर्ग मील में ही आ जाते है। किसी मित्र ने कहा – कितने मनुष्य-घंटे

यद्यपि पचास वर्ष एक ऐसी वैचारिक गुलामी के बीते हैं और अभी उस का नशा हमारे दिमाग पर है पढ़े-लिखे आदमी पर विशेष रूप से है। उस नशे से उनको उबारना होगा।

इसमें बर्वाद हुए। हमने कहा, मनुष्य-घंटा का हिसाब आप रखिए। आप सोंचिए इतने करोड़ मनुष्य एक क्षण में नहाकर नई ऊर्जा लेकर जा रहे हैं, एकता का नया भाव लेकर जा रहे हैं। इस स्नान से इन्हें जो शक्ति मिल रही है वह कितनों को कितने घंटे मिलता है।

स्वदेशी की बात जब सोंचे तो इस गहराई में सोचें – ये देश कितनी विविधताओं को एक साथ जीता रहा है, इसके साथ जीवन के एक चैतन्य के प्रवाह को भी देखता रहा है, अनुभव करता रहा है; ऐसा नहीं है कि यह भीतर ही अनुभव हो बाहर के उपकरण में भी वही अनुभव दिखाई पड़ता है। एक किसान जिस प्रकार यहाँ हल चलता है वैसा ही मणिपुर या सौराष्ट्र का किसान हल चलता है इनके हल चलाने की गति में, मोड़ में कोई अंतर नहीं है। क्यों नहीं अंतर है – इसलिए नहीं अंतर है, कि उनका छंद मिला हुआ है अपने स्वदेश के धर्म से, स्वदेश के आचरण से। उस छंद को, उस आचरण को आप पहचाने और देखें, इसमें जो सुख मिलता है इसमें जो आत्मिक संतोष मिलता है उसकी कोई कीमत नहीं है – उसका कोई मूल्यांकन नहीं हो सकता। वह अपने आपमें आदमी को एक ऐसा विश्वास देता है जो हर चीज के सामने तनकर खड़ा हो सकता है चाहे उसके पास लंगोटी हो लेकिन वह तनकर खड़ा हो सकता है कि लंगोटी है तो हमारी है, किसी की दी हुई लंगोटी नहीं है। इस भाव से स्वदेशी जागरण मंच को सक्रिय होना होगा।

यद्यपि पचास वर्ष एक ऐसी वैचारिक गुलामी के बीते हैं और अभी उस का नशा हमारे दिमाग पर है पढ़े-लिखे आदमी पर विशेष रूप से है। उस नशे से उनको उबारना होगा। उस नशे को छुड़ाना कोई आसान काम नहीं, बड़ा कठिन काम है। पर, इस देश में एक भीतरी शक्ति है, कहीं कोई एक भीतरी आवाज है जो सभी चीजों के बावजूद कभी फूट पड़ती है, कभी आदमी को एक चोट पहुँचती है तुम क्या कर रहे हो? उस आवाज को सुनने की चेष्टा करें और तब आपका जागरण-आंदोलन केवल आर्थिक आंदोलन नहीं रहेगा – एक महान वैचारिक आंदोलन होगा। यह देश के लिए नई नींव का निर्माण करेगा। मैं इन्हीं शब्दों के साथ ठेंगड़ी जी के प्रति, काशी की जनता का और अपना आभार व्यक्त करता हूँ। वे काशी आए, चार साल के बाद आए हैं और आएँ आते रहें जल्दी जल्दी आते रहें......

धन्यवाद।

(२१ अक्टूबर, २००१ को काशी विद्यापीठ, वाराणसी में राष्ट्रऋषि दत्तोपंत ठेंगड़ी के सान्निध्य में आयोजित स्वदेशी पंचायत के अवसर पर दिए गए पं० विद्यानिवास मिश्र का भाषण)

Scanned with OKEN Scanner

भारत में बहुराष्ट्रीय निगमों तथा कॉरपोरेट प्रशासन की चुनौतियाँ

■ प्रो० बी०बी० टण्डन / डॉ० ए०के० वशिष्ठ*

(गतांक से आगे)

आई०सी०आई०सी०आई० की कॉरपोरेट प्रशासन संहिता

आई०सी०आई०सी०आई० ने आंतरिक स्तर कॉरपोरेट प्रशासन व्यवस्था का विकास किया है जो निदेशक मंडल में आई०सी०आई०सी०आई० अधिकारियों के प्रतिनिधित्व को चार तक ही सीमित रखता है। इसने वास्तविक रूप में कॉरपोरेट प्रशासन को लागू करना तय किया है जिसके अंतर्गत इसके निदेशक मंडल के कर्त्तव्यों, संयोजन, संरचना, कार्य एवं दायित्वों को परिभाषित कर इसे एक नया स्वरूप दिया जाएगा। यहाँ निदेशक मंडल तथा कार्यकारी प्रबंधकों के कर्त्तव्यों का निर्धारण होगा। निदेशक मंडल या तो एक पूर्ण बोर्ड के रूप में कार्य करेगा या फिर एक पाँच सदस्यों की विशेष समिति के माध्यम से जो प्रबंधकीय कार्य देखेगी। बोर्ड (मंडल) पूर्णत: स्वायत्त होगा, क्योंकि इसके ७५ प्रतिशत सदस्य अकार्यकारी निदेशक होंगे जिनका कार्यकाल अधिकतम ८ वर्ष या फिर ७० वर्ष की उम्र तक होगा। वोर्ड अब लोन के आवेदनों या अन्य सामान्य कार्यों से अलग रहेगा। ये सारे कार्य कार्यकारी निदेशकों की समिति करेगी। वोर्ड का कार्य केवल सभी कारपोरेट कार्यों का विश्लेषण होगा जिसमें अच्छा कॉरपोरेट प्रशासन उपलब्ध करना भी शामिल होगा। निम्नलिखित समितियाँ वनायी जाएगी। प्रबंधन, ऑडिट, नामांकन, क्षतिपूर्ति और निवेश। प्रबंधन समिति कर्ज (लोन) सहित अन्य दैनिक कार्यों को देखेगी। ऑडिट समिति आंतरिक ऑडिट रपटों की पुर्नपरीक्षा करेगी और यह तय करेगी कि सभी लेन-देन नियमों एवं कानूनों के अंतर्गत हों। नामांकन समिति, बोर्ड में खाली स्थानों को भरने के लिए उम्मीदवारों के नाम सुझाएगी, उच्च स्तर के प्रबंधन का चयन तथा उनके कार्यों की जाँच करेगी एवं बोर्ड तथा इसके सदस्यों के प्रदर्शन की जाँच करेगी। क्षतिपूर्ति समिति कार्यकारी निदेशकों को भुगतान के लिए बोर्ड तथा शेयरधारकों को क्षतिपूर्ति की मात्रा सुलझायेगी। निवेश समिति निवेश; नये इकाईयों, लेन-देन तथा अन्य ट्रेजरी से संबंधित कार्यों की देख-रेख करेगी।

अच्छे कारपोरेट प्रशासन की ओर पहल

कारपोरेट प्रशासन बहुत विस्तारित है और यह अच्छे कॉरपोरेट प्रदर्शन तथा वित्तीय आचार संहिता से भी आगे है। यदि हम अच्छे कारपोरेट प्रशासन को केवल लाभ कमाना तथा दायित्वों को विभिन्न लोगों, शेयरधारकों, कर्मचारियों, ग्राहकों तथा आपूर्तिकर्त्ता में ठीक ढंग से बाँटने को मानें तो इसमें बहुत-सी कंपनियाँ शामिल होगी। इन सभी ऊपरी शर्तों को पूरा करने वाले विभिन्न कॉरपोरेट्स नियमों को तोड़ने वाले होते हैं तथा वे ऐसी जोखिम भरे क्षेत्रों में निवेश करते है जहाँ लाभ नहीं मिल पाता। अत: कॉरपोरेट प्रशासन कंपनी के सभी कार्यकलापों की देखरेख तथा आंतरिक एवं बाहरी व्यापार का संचालन करता है तथा सुनिश्चित करता है कि शेयरधारकों एवं आम जनता के प्रति अपने दायित्वों को प्रबंधन तथा निदेशक मंडल ठीक ढंग से निभाये। अच्छे कॉरपोरेट प्रशासन के लिए आवश्यक है कि कंपनी से संबंधित सभी पक्ष अपने को इस कार्य के लिए तैयार करें। इसमें से प्रमुख पक्ष सरकार, निदेशक मंडल, ऑडिटर तथा शेयर धारक अपने-अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह इस इच्छित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए करें।

सामाजिक तथा आर्थिक कल्याण में महत्वपूर्ण योगदान देने के कारण संयुक्त स्टॉक कंपनियों को सबसे प्रभावी ढंग से कार्य करना चाहिए। बेहतर कॉरपोरेट प्रशासन इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। अच्छे कॉरपोरेट प्रशासन के लिए कंपनियों के कार्यकलापों से संबंध रखने वाले शासकीय नियामक प्राधिकरणों, निदेशक मंडल, लेखा-परीक्षकों तथा शेयरधारकों इत्यादि सभी का संकेन्द्रित प्रयास आवश्यक है।

कॉरपोरेट प्रशासन में सरकार की भूमिका

अच्छे कॉरपोरेट प्रशासन को निश्चित करने में सरकार को नेतृत्व करना होगा। सरकार की भूमिका कॉरपोरेट प्रशासन के लिए नियम बनाने तथा उनके प्रभावी प्रयोग को सुनिश्चित करने में होगी। सरकार अपने

*भूल सुधार : पिछले अंक में छपे इस लेख के प्रथम भाग में लेखक के नाम में भूलवश वशिष्ठ के स्थान पर अवस्थी छप गया था।

Scanned with OKEN Scanner

नियंत्रक तकनीकों के माध्यम से केवल इस मंडल के नियमों को तैयार करेगी और इन नियमों के प्रभावी कार्यान्वयन की जिम्मेवारी कॉरपोरेट सेक्टर पर होगी। कॉरपोरेट विभिन्न नियमों के कार्यान्वयन संबंधी अलग-अलग रिपोर्ट पेश करेंगे। सरकार विभिन्न क्षेत्रों के पेशेवरों की एक सूची बना सकती है जिसमें से विभिन्न कंपनियों में निदेशक नियुक्त किए जा सकते हैं। एक समान एकाउंटिंग नीतियों और इच्छित प्रक्रिया के कार्यान्वयन पर कंपनियों की स्थिति की जाँच के लिए एक विशेषज्ञ समिति सरकार गठित कर सकती है। सरकार प्रकटन मानकों में सुधार कर तथा अपने नामित निदेशकों के द्वारा परोक्ष नियंत्रण के माध्यम से इस दिशा में एक प्रभावी भूमिका का निर्वाह कर सकती है। उदारीकरण के दृष्टिकोण के साथ चलते हुए सरकार कॉरपोरेट प्रशासन का कार्य पूर्णतः निदेशक मंडल पर भी छोड़ सकती है।

निदेशक मंडल और कॉरपोरेट प्रशासन

कॉरपोरेट भारत का गवर्नर होने के नाते निदेशक मंडल की यह जिम्मेवारी है कि वह शेयर धारकों के लाभ को बढ़ावें तथा संरक्षित करें क्योंकि वे शेयर धारकों के प्रतिनिधि होते हैं। निदेशक मंडल निश्चित रूप से कंपनी के लाभ एवं शेयर धारकों का मूल्य बढ़ाने का प्रयत्न सत्यनिष्ठा तथा पारदर्शिता के साथ करें। बोर्ड का लक्ष्य प्रत्यक्ष तथा परोक्ष हितों के बीच संतुलन स्थापित करना है। शेयर धारकों, ग्राहकों, करदाताओं, प्रोत्साहकों तथा निदेशकों के हितों में टकराव नहीं होना चाहिए।

बोर्ड विभिन्न हिस्सा धारकों के प्रति कई रूपों में जिम्मेवार होता है और निदेशकों को विभिन्न तरह के हितों के टकराव के बीच समरसता के साथ संतुलन बनाना है। बोर्ड के कार्यों में रणनीतिक निर्धारण, लक्ष्य का निर्धारण तथा उपलब्धियों की समीक्षा एवं देख-रेख है। बोर्ड के प्रभाविकता को उसके सदस्यों की संख्या के माध्यम से बढ़ाया/घटाया जा सकता है। एक विश्वास योग्य बोर्ड मूल्य आधारित होता है तथा यह खुद के योगदान की समीक्षा भी करता है। बोर्ड को कम समय के प्राथमिकता वाले कार्यों तथा दीर्घावधि में कंपनी के भविष्य को सुरक्षित रखने वाले कार्यों के बीच संतुलन बनाना चाहिए। तुरत पड़ने वाले दबावों से दीर्घावधि के लक्ष्यों को नहीं छोड़ना चाहिए।

कॉरपोरेट प्रशासन के निदेशक मंडल से संबंधित कुछ मुद्दों में प्रमुख है बोर्ड की संरचना – बोर्ड का स्वरूप क्या हो? इसमें कार्यकारी निदेशक हों या अकार्यकारी? बोर्ड का आकार क्या हो और यह किस प्रकार किसी एक का रबर स्टाम्प न बनें? बोर्ड की योग्यता को निम्नलिखित मानकों पर मापा जा सकता है – (१) बोर्ड को शेयरधारकों के फण्ड, उपयोग और प्राप्तियों से कंपनी मालिक को संतुष्ट करना है, (२) गोपनीय रणनीतियों का खुलासा किए बिना बोर्ड के अपने कार्यों में पारदर्शिता होनी चाहिए, (३) बोर्ड के उत्कृष्टता के लिए इसके सदस्यों की योग्यता, ट्रैक रेकार्ड, अनुभव, सक्षमता, समरसता तथा दक्षता निर्णायक होती है। अन्य चीजें है – समान, छोटा बोर्ड, सभी निदेशकों का सभी निर्णयों में कार्यशील रहना तथा (४) रणनीतिक निर्णयों को लेने में बोर्ड स्वतंत्र हो यह तय होना चाहिए।

यह उम्मीद की जाती है कि कंपनी के कार्यों में जिम्मेवारी तथा पारदर्शिता निभायी जाएगी।

अकार्यकारी निदेशकों की भूमिका

कॉरपोरेट प्रशासन के उच्च मानदंडों को प्राप्त करने के लिए तथा कंपनी के बोर्ड के प्रभावी संचालन में अकार्यकारी निदेशकों की उपयोगिता को तेजी से मान्यता मिल रही है। अकार्यकारी निदेशकों का कॉरपोरेट प्रशासन पर प्रभाव न केवल बोर्ड के संरचना तथा प्रक्रिया से संबंधित है बल्कि यह नियुक्त व्यक्ति पर भी निर्भर करता है। अकार्यकारी निदेशक भी अपने कार्यकारी सहकारियों की भांति कंपनी के आगे बढ़ने तथा व्यापारिक सफलता के लिए उत्तरदायी हैं। अकार्यकारी निदेशक कंपनी के रणनीति को तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। उनका योगदान क्रिटिकल, लेकिन महत्वपूर्ण एवं रचनात्मक हो सकता है। वास्तव में वे जितना ही बोर्ड में अपनी भूमिका का निर्वाह करेंगे, वे उतना ही कॉरपोरेट प्रशासन को प्रभावित करेंगे।

कैडबरी समिति के द्वारा बनाए गए 'कोड ऑफ बेस्ट प्रैक्टिसेज' में मान्यता प्रदान की है कि जहाँ चेयरमैन मुख्य कार्यकारी होता है, यह आवश्यक है कि बोर्ड में कुछ ताकतवर तथा स्वतंत्र सदस्य भी हो जिन्हें वरीय सदस्य का दर्जा मिला हो। चूँकि सभी निदेशकों को बराबर कानूनी जिम्मेवारियाँ है, यह है उनके निर्णयों में स्वतंत्रता, जिससे

Scanned with OKEN Scanner

सामाजिक तथा आर्थिक कल्याण में महत्वपूर्ण योगदान देने के कारण संयुक्त स्टॉक कंपनियों को सबसे प्रभावी ढंग से कार्य करना चाहिए। बेहतर कॉरपोरेट प्रशासन इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

बाहरी (अकार्यकारी) निदेशक बोर्ड के कार्यों में प्रभावी भूमिका निभा सकते हैं।

सी०आई०आई० के कॉरपोरेट प्रशासन संहिता के अनुसार बोर्ड का स्वतंत्र, पारदर्शी तथा कुशल प्रशासन उसमें योग्य तथा पेशेवर अकार्यकारी निदेशकों का एक कोर समूह रहने पर ही संभव है जो अपनी दोहरी भूमिका (अर्थात् प्रबंधन तथा प्रस्तुत मामलों की समझ तथा कंपनी के शेयरधारकों के प्रति अपनी जिम्मेवारियाँ) की समझ हो तथा उन्हें निभाये। इस तरह अकार्यकारी निदेशक बोर्ड के सक्रिय सदस्य बन जाते हैं। उन्हें बैलेंसशीट, लाभ तथा हानि एकाउण्ट, वित्तीय अनुपात, कैश फ्लो इत्यादि पढ़ना आता हो तथा वे कंपनी नियमों तथा आर्थिक कानूनों के जानकार हों। सी०आई०आई० की रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि कोई एक व्यक्ति अधिकतम दस कंपनियों में ही निदेशक का पद संभाले ताकि वह अपने कार्यों से न्याय कर सकें। इसमें यह भी सुझाया गया है कि १०० करोड़ से अधिक के टर्नओवर वाली कंपनियों में यदि चेयरमैन अकार्यकारी हो तब कम-से-कम ३० प्रतिशत अकार्यकारी निदेशक होने चाहिए तथा चेयरमैन एवं प्रबंध निदेशक दोनों के एक ही व्यक्ति के पास होने की स्थिति में कम-से-कम ५० प्रतिशत बोर्ड सदस्य अकार्यकारी होने चाहिए।

यह पाया गया है कि बहुत से केसों में नामित निदेशकों को प्रबंधन की तरफ से मिलने वाले प्रतिक्रिया में अपने वित्तीय संस्थान जिससे वह नामित है, में उसकी स्थिति तथा पद पर निर्भर होता है। कुछ मामलों में बहुत से नामित निदेशक (सेवानिवृत्त नौकरशाह, विद्वान इत्यादि) अपने वृहत अनुभव तथा घनात्मक विचारों से तथा व्यापारिक निर्णय लेने की क्षमता के कारण कॉरपोरेट बोर्ड की बैठक में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं तथा उन्हें निदेशक के रूप में उनके नॉमिनेशन को खत्म करने के बाद भी रखा जाता है। नामित निदेशक वार्षिक वृहत सभाओं में प्रभावी ढंग से भाग लेकर अपनी उपस्थिति महसूस करा सकते है तथा शेयरधारकों के विश्वास को बढ़ा सकते हैं और अगर आवश्यक हो तो शेयरधारकों को अपने वित्तीय संस्थान के विचारों से भी अवगत करा सकते हैं।

लेखा-परीक्षक तथा कॉरपोरेट प्रशासन

कंपनी एक्ट १९५६ के अनुसार लेखा-परीक्षक को कंपनी के वित्तीय घोषणाओं के साफ-सुथरे तथा सच्चे होने की महत्वपूर्ण जिम्मेवारी दी गयी है। लेखा-परीक्षक प्रबंधन के दबाओं से मुक्त भी होते है। एक बार नियुक्त होने के बाद उन्हें आसानी से नहीं हटाया जा सकता है। बहुत से मामलों में लेखा-परीक्षक अपनी कंपनियों से कई अन्य भूमिकाएँ जैसे परामर्शदाता, कर सलाहकार इत्यादि के रूप में जुड़े होते हैं। कंपनी एक्ट के अनुसार, लेखा-परीक्षकों को कंपनी के खातों, बैलेंसशीट तथा लाभ एवं हानि एकाउण्टों की सच्चाई तथा निष्पक्षता पर अपने विचार व्यक्त करने होते हैं। लेखा-परीक्षक स्वतंत्र रूप से कार्य करने में सक्षम होते हैं तथा निष्पक्ष एवं स्वतंत्र विचार देते हैं।

वर्तमान में जैसे लेखा-परीक्षकों की नियुक्ति शेयरधारकों द्वारा वार्षिक बैठकों में की जाती है - वैसे ही होनी चाहिए। उनका चुनाव उद्योग से संबंधित, कंपनी, बैंकों, संस्थाओं तथा भारतीय चार्टर्ड एकाउण्टेंट संस्थान के द्वारा बनाए गए सूची तालिका से किया जा सकता है। उनका पारिश्रमिक भी शेयरधारकों को तय करना चाहिए और इसे निदेशक मंडल के जिम्मेवारी पर नहीं छोड़ना चाहिए। पारिश्रमिक निश्चित होना चाहिए और इसे निश्चित करते समय, कंपनी का आकार, कार्य-कलाप, समय और प्रासंगिक मुद्दों पर ध्यान रखना होगा। लेखा-प्रतिष्ठानों को एक निश्चित समय के बाद बदलते रहना चाहिए।

शेयरधारक और कॉरपोरेट प्रशासन

वार्षिक सामान्य बैठक में प्रभावी रूप से भाग लेकर जोखिम पूँजी लगाने वाले होने के कारण शेयरधारक कॉरपोरेट प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। वे कार्यकारी प्रबंधकों तथा निदेशक मंडल के कार्यों के उपयुक्तता पर प्रश्न कर सकते हैं। वे कंपनी के प्रकार्य में सुधार के लिए कंपनी की नीतियों, कार्यों तथा योजनाओं में परिवर्तन के लिए सुझाव दे सकते हैं। जबकि वास्तव में शेयरधारक अपनी इस महत्वपूर्ण भूमिका को अपने संगठित न होने के कारण निभा नहीं पाते हैं। संस्थानिक निवेशक बड़े तथा संगठित होने के कारण कॉरपोरेट प्रशासन में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। बड़ी होल्डिंग होने के कारण बोर्ड के नियमावलियों में भाग ले सकते हैं तथा कॉरपोरेट नीतियों का ढाँचा बना सकते है।

प्रभावशाली शेयरधारकों तथा पेशेवर प्रबंधकों के बीच का संबंध किसी भी कंपनी में कॉरपोरेट प्रशासन के विशेष ढाँचे को प्रभावित करता है। जबकि शक्तियाँ प्रबंधन के पक्ष में तब झुक जाती हैं जब मालिकाना हक बहुत फैला हुआ हो और कोई एक समूह पूर्ण नियंत्रण नहीं रखता है, अकार्यकारी निदेशकों की संख्या कार्यकारी निदेशकों की अपेक्षा कम हो तथा संस्थानिक निवेश की मात्रा ज्यादा हो। जब भी इस तरह की स्थितियाँ आती हैं, प्रभावशाली समूह कॉरपोरेट दिशा को तय करने में अपना नियंत्रण खोता है और संस्थानिक निवेशकों पर यह जिम्मेवारी आती है कि वे बेहतर कॉरपोरेट प्रशासन के लिए विशेषज्ञ सेवाएँ उपलब्ध कराएँ।

बहुत हाल तक, वित्तीय संस्थान निष्क्रिय निवेशक होते थे। यह सब अब बदल रहा है। अब ऐसी कुछ घटनाएँ हुई हैं जिनमें वित्तीय संस्थानों अपने हितों एवं धन के संरक्षण के लिए आगे आए हैं जिसका कॉरपोरेट प्रशासन पर सार्थक प्रभाव पड़ा है। इस सक्रियता से कॉरपोरेट क्षेत्र की भौहें टेढ़ी

(शेष पृष्ठ ३९ पर)

Scanned with OKEN Scanner

खुदरा व्यवसाय पर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की काली छाया

■ मुकुन्द कुमार

आजकल बहुत सारी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ खुदरा व्यवसाय में प्रभावी ढंग से अपना पैठ जमा चुकी है, जिनमें मुख्य रूप से वालमार्य, मैट्रो, सीयर्स रीबॉक, मार्क और स्पेन्सर, टेस्को, सैन्सबरी आदि प्रमुख है। वर्तमान में विश्व की सबसे बड़ी कंपनी वालमार्ट है जिसकी वार्षिक आय लगभग ९,४०,००० करोड़ है .....ये बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारतीय खुदरा बाजार में अपना आधिपत्य जमाना शुरू कर दी है।

सरकार की गलत नीतियों का खामियाजा सिर्फ कृषि, थोक व्यापार, शिक्षा जगत ही नहीं भुगत रहा है, बल्कि खुदरा व्यवसाय पर भी प्रतिकूल प्रभाव दिखाई दे रहा है। आज आर्थिक मंदी के दौर में बेरोजगारी दिन-प्रति-दिन बढ़ रहा है ऐसे में व्यवसाय जगत का मूलभूत ढ़ाँचा खुदरा व्यवसाय प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के कारण अपना आधार खो रहा है, जिससे इस क्षेत्र से जुड़े लोगों के बीच एक संशय की स्थिति बनी हुई है।

आजकल बहुत सारी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ खुदरा व्यवसाय में प्रभावी ढंग से अपना पैठ जमा चुकी है, जिनमें मुख्य रूप से वालमार्ट, मैट्रो, सीयर्स रीबॉक, मार्क और स्पेन्सर, टेस्को, सैन्सबरी आदि प्रमुख है। वर्तमान में विश्व की सबसे बड़ी कंपनी वालमार्ट है जिसकी वार्षिक आय लगभग ९,४०,००० करोड़ है। (जो टाटा समूह की सभी कंपनियों के कुल आय के २५ गुना है) अब ये बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारतीय खुदरा बाजार में अपना आधिपत्य जमाना शुरू कर दी है। इसके लिए मुख्य रूप से जिम्मेवार सरकार द्वारा घोषित शत-प्रतिशत विदेशी निवेश की नीति है। ये कंपनियाँ पहले भी भारत में पाँव जमाने की प्रयास कर चुकी है पर उस समय क्यू आर सिस्टम होने से इन्हें मुँह की खानी पड़ी थी। अब मात्रात्मक प्रतिबंध भी हट चुका है और देश में १०० प्रतिशत विदेशी निवेश की आजादी भी दे दी गयी है। खुदरा व्यवसाय में १०० प्रतिशत विदेशी निवेश देश के लिए हानिकारक है। इसका असर देश के अर्थव्यवस्था पर ठीक नहीं होगा। इसका विरोध करते हुए पी.एच.डी. चैम्बर ऑफ कॉमर्स ने कहा कि खुदरा व्यापार में शत-प्रतिशत विदेशी निवेश की अनुमति देना हानिकारक होगा। क्योंकि मौजूदा समय में अनुचित एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार पर नियंत्रण रखने के लिए पर्याप्त व्यवस्था नहीं है। ऐसे में सरकार को इस प्रस्ताव पर गंभीरतापूर्वक पुर्नविचार करना चाहिए। हमारे यहाँ और भी समस्याएँ हैं। गरीब और अमीर के बीच की खाई बहुत चौड़ी है, बेरोजगारों की संख्या बहुत बड़ी है और सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था का नितांत अभाव है। ऐसे में खुदरा व्यापार में शत-प्रतिशत निवेश की अनुमति देना अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मारने के समान है। पीएचडी की विज्ञप्ति के अनुसार खुदरा व्यापार का जीडीपी में हिस्सा दस प्रतिशत से अधिक का है जबकि इसमें देश में रोजगार प्राप्त लोगों में से लगभग ८ प्रतिशत लोगों को रोजगार मिला है। आमतौर

विश्व के प्रमुख खुदरा व्यवसायी – फोर्चुन - ५००

यू.एस. मिलियन डॉलर में

नाम	देश	आमदनी	लाभ	संपत्ति	इक्विटी	अनुमानित बाजार भाव-लाख में
वालमार्ट स्टोर्स	अमरीका	१,३९,२०८	४,४३०	४९,२७१	२१,११२	९.१०
मैट्रो	जर्मनी	५२,१२६	३२६	२२,२६४	४,२३०	१.८१
सीयर्स रोबक	अमरीका	४१,३२२	१,०४८	३७,६७५	६,०६८	३.२४
के-मार्ट	अमरीका	३३,६७४	६६८	१४,१६४	५.९७९	२.७३
जे.सी. पेत्री	अमरीका	३०,६७८	५९४	२३,६३८	७,१६९	२.५०
कैरेफोर	फ्रांस	३०,४७९	७१९	२६,४१०	४,५९१	१.४४
होम डिपोट	अमरीका	३०,२१९	१,६१४	१३,४६५	८,७४०	१.४०
टेस्को	ब्रिटेन	२८,४४२	१,००४	१३,९३४	७,०१२	१.३१
क्रोगर	अमरीका	२६,२०२	४,१०५	८,७००	३८७	१.४०
सेफवे	अमरीका	२४,४८४	८०६	११,३३९	३,०८२	१.७०

Scanned with OKEN Scanner

देशभर में आज लगभग एक करोड़ २० लाख खुदरा व्यापारी है। लगभग चार करोड़ लोग इस व्यवसाय से जुड़े है। देश के अर्थव्यवस्था उत्पादन एवं संपत्ति के सुयोग्य वितरण में खुदरा व्यापारी का एक महत्वपूर्ण योगदान है, ऐसी स्थिति में इस क्षेत्र में विदेशी निगमों को छूट देने से देश की अर्थव्यवस्था पर असर पड़ने के साथ-साथ करोड़ों लोग बेरोजगार हो जाएँगे।

पर यह माना जाता है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ देश के १० से १५ प्रतिशत खुदरा व्यवसाय पर कब्जा कर सकेगी लेकिन वास्तविकता कुछ और हैं। अपने आगमन के साथ ही ये वर्तमान भारतीय खुदरा व्यवसाय के ३५ से ५० प्रतिशत तक पर कब्जा कर सकती हैं। यह केवल देश के १५ महत्वपूर्ण महानगरों के व्यापार का आकलन है।

इन बहुराष्ट्रीय निगमों की वित्तीय स्थिति हमारे देश के बड़े-से-बड़े उद्योगों से कहीं मजबूत है वैसी हालत में छोटे व्यापारी कहाँ जाएँगे। छोटे व्यापारियों के कारोबार पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। इनके आगमन से पहले हमें नियंत्रण के लिए आवश्यक नियमों का प्रावधान करना होगा जो हमारे देशी खुदरा व्यवसायियों के हितों को संरक्षित करें।

खुदरा व्यापार में शत-प्रतिशत विदेशी निवेश का प्रभाव

व्यापारियों पर प्रभाव : बहुराष्ट्रीय व्यापारियों के पास वित्तीय स्रोत काफी अधिक मात्रा में उपलब्ध है, इसलिए वे लोग माल को कम मूल्य पर भी बेंच सकते है, जबकि भारतीय खुदरा व्यापारी मुख्य रूप से पारंपरिक व्यवसाय पर निर्भर रहते है और उनके पास बहुराष्ट्रीय कंपनियों जैसे वित्तीय स्रोत उपलब्ध नहीं होते है। इसका व्यवसाय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

छोटे उत्पादकों पर प्रभाव : बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ उन्नत मशीनों द्वारा तैयार माल विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक कम मूल्य पर उपलब्ध कराते है। विश्व व्यापार संगठन के नियमों के अनुसार अगर ये कंपनियाँ भारत में प्रवेश करती है तो सरकार छोटे उत्पादकों से माल खरीदने के लिए इनके ऊपर किसी तरह का दबाव नहीं बना सकती। इस तरह छोटे-छोटे उत्पादक जो पहले से ही मुक्त व्यापार के कारण डरे हुए है बन्द होने की स्थिति में आ जाएँगे और यह बेरोजगारी का एक बहुत बड़ा कारण होगा।

उपभोक्ता पर प्रभाव : बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ बाजार पर प्रभावी होने के बाद अपने हिसाब से मूल्य का निर्धारण करेंगे और उपभोक्ता को मजबूरी में उनके पास से माल खरीदना पड़ेगा। क्योंकि उनके बाजार पर हावी होने का अर्थ होगा भारतीय उद्यमियों (व्यवसायियों) का बाजार से खात्मा।

ब्रिटेन में प्रतियोगिता समिति ने वहाँ के पहले पाँच खुदरा व्यवसायियों के कार्यकलापों की जाँच करने के बाद पाया कि उनके बहुत से कार्य जनता के हक के विरुद्ध है। इस प्रकार शुरू में तो ये सस्ती कीमतों का लालच देंगे लेकिन आगे चलकर ये सस्ती कीमतें उपभोक्ताओं को बहुत महँगी पड़ेगी।

विश्व व्यापार संगठन और खुदरा व्यापार : खुदरा व्यापार सेवा क्षेत्र का माँग है और विश्व व्यापार संगठन के बैठक में खुदरा व्यापार के बारे में चर्चा तक नहीं हुई और बहुत से विकसित देश अपने यहाँ दूसरे देश के खुदरा व्यापारियों को व्यवसाय करने की अनुमति नहीं दिए है। भारत सरकार पर भी इस तरह की कोई जिम्मेवारी विश्व व्यापार संगठन की तरफ से नहीं आती है जिसके लिए कि इस क्षेत्र को विदेशी निवेशकों के लिए पूर्णतः खोल दिया जाए।

वर्तमान सरकार की नीति : बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारतीय बाजार में प्रवेश करने की लगातार कोशिश कर रही है।

इस परिपेक्ष्य में योजना आयोग द्वारा मोंटेक सिंह अहलूवालिया के नेतृत्व में गठित टास्क फोर्स तथा मैकिम्पी ग्लोबल इंस्टीट्यूट द्वारा 'रोजगार के मौके' विषय पर की गई सिफारिश बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए वरदान साबित हुए है। दुर्भाग्यवश इनकी सिफारिशों में नए रोजगार सृजन की बात कही गई है, लेकिन खुदरा व्यवसाय में पहले से स्थापित जो लोग बेरोजगार होंगे, उनके बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है।

इन सिफारिशों के कारण खुदरा व्यापारियों का अस्तित्व ही खतरे में पड़ने वाला है। इन सिफारिशों में मुख्य रूप से खुदरा व्यापार में विदेशी पूँजी की अनुमति तथा इस क्षेत्र का निजीकरण की बात कही गई है। विदेशी दबाव में इन सिफारिशों के लागू होने से खुदरा व्यापारी, विदेशी शक्तियों द्वारा चलाए गए वैश्विकरण का शिकार हो जाएगा।

देशभर में आज लगभग एक करोड़ २० लाख खुदरा व्यापारी है। लगभग चार करोड़ लोग इस व्यवसाय से जुड़े है। देश के अर्थव्यवस्था उत्पादन एवं संपत्ति के सुयोग्य वितरण में खुदरा व्यापारी का एक महत्वपूर्ण योगदान है, ऐसी स्थिति में इस क्षेत्र में विदेशी निगमों को छूट देने से देश की अर्थव्यवस्था पर असर पड़ने के साथ-साथ करोड़ों लोग बेरोजगार हो जाएँगे।

अतः सरकार को इस क्षेत्र में शत-प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश लागू करने से पहले इससे उत्पन्न मूलभूत समस्याओं की तरफ ध्यान देना चाहिए। जब तक इस संकट का संगठित रूप से मुकाबला नहीं होगा, हम व्यापारी वर्ग और देश को नहीं बचा सकते। ■

Scanned with OKEN Scanner

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने पूर्ण स्वराज की बात करते समय ग्राम स्वराज की बात की। उनके अनुसार ग्राम स्वराज से ही देश पूर्ण स्वराज प्राप्त कर सकता है। ग्राम स्वराज के लिए आवश्यक है गाँवों का विकास।

ग्राम विकास में गैर-परम्परागत ऊर्जा स्रोतों की उपयोगिता

■ धीप्रज्ञ द्विवेदी

हमारे देश की ७० प्रतिशत आबादी आज भी गांवों में रहती है। जिनमें से लगभग ४० प्रतिशत लोग सरकार द्वारा तय की गयी गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करते हैं जिनके पास दो समय का भोजन भी उपलब्ध नहीं होता। वे खेतों में मेहनत तो करते है लेकिन उनका कुल उत्पादन उनके जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं, भोजन, वस्त्र और आवास को पूरा नहीं कर पाता है। शिक्षा जैसी बातें तो दूर की कौड़ी लगती है। एक तरफ तो हम चन्द्रमा पर उतरने की बात करते हैं दूसरी तरफ किसान आत्महत्या कर रहे होते हैं। हमारे ग्रामीण बंधु गांवों से शहरों की तरफ पलायन कर रहे हैं। इस पलायन के कारण जहाँ गाँवों में श्रम शक्ति में ह्रास हो रहा है वहीं शहरों में भीड़, झुग्गी-झोंपड़ी कालोनियों में तेजी से बढ़ोत्तरी हो रही है। गाँवों में बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। इसके परिणाम स्वरूप आतंक के नए रूपों का भी जन्म हो रहा है। इन सभी से बचाव के लिए गाँवों का विकास आवश्यक है।

महाभारत के शांति पर्व में पाण्डवों के दूत बन कर गए कृष्ण पाँच गाँवों की बात करते हैं। क्या केवल पाँच गाँवों से वर्त्तमान स्थिति में किसी राजा का काम सुचारु ढंग से चल सकता है? कभी नहीं, लेकिन कृष्ण ने पाण्डवों के लिए पाँच गाँवों की बात की क्योंकि गाँव की अर्थव्यवस्था उस समय बाहरी दबावों से मुक्त होती थी और गाँव आर्थिक स्तर पर आत्मनिर्भर और स्वतंत्र होते थे। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने पूर्ण स्वराज की बात करते समय ग्राम स्वराज की बात की। उनके अनुसार ग्राम स्वराज से ही देश पूर्ण स्वराज प्राप्त कर सकता है। ग्राम स्वराज के लिए आवश्यक है गाँवों का विकास। यह विकास सतत होना चाहिए। सतत विकास के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया में हम अपने प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करते समय इस बात का ध्यान रखें कि दोहन से प्राकृतिक संसाधन विनष्ट न हों। अर्थात् हमें प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करते समय 'ब्याज' और 'मूलधन' के सिद्धांत (मूलधन को सुरक्षित रख ब्याज को खर्च करना) को अपनाना होगा। अर्थात् दोहन करते समय इनके पुनरुत्पादन प्रक्रिया को ध्यान में रखकर चलना होगा। आज उचित तकनीकी ज्ञान और प्रबंधन के द्वारा प्राकृतिक उत्पादों और उप-उत्पादों का दोहन प्रतिकूल प्रभावों के बिना किया जा सकता है। विकास की वर्त्तमान वैश्विक प्रक्रिया के साथ चलने के लिए हमें तकनीकी ज्ञान का भरपूर उपयोग करना है और इसके

सतत विकास के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया में हम अपने प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करते समय इस बात का ध्यान रखें कि दोहन से प्राकृतिक संसाधन विनष्ट न हों। अर्थात् हमें प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करते समय 'ब्याज' और 'मूलधन' के सिद्धांत (मूलधन को सुरक्षित रख ब्याज को खर्च करना) को अपनाना होगा।

Scanned with OKEN Scanner

ग्रामीण विकास की मूलभूत आवश्यकता ईंधन और ऊर्जा की है। सर्वविदित है कि ईंधन और ऊर्जा के लिए वर्त्तमान में प्रयुक्त हो रहे परम्परागत ऊर्जा स्रोत (पेट्रो उत्पाद) अगले कुछ वर्षों तक ही हमारी ईंधन की समस्या हल कर पायेंगे। वैज्ञानिकों का मानना है कि दिनों-दिन बढ़ती आबादी के कारण बढ़ते आवास, पेयजल, खाद्यान्न आदि की समस्या के साथ-साथ ईंधन की बढ़ती माँग की समस्या बढ़ती जाएगी

लिए सबसे महत्वपूर्ण है ऊर्जा की उपलब्धता।

विकास के सतत होने में ऊर्जा महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विभिन्न देशों में किए गए अनुसंधानों से यह निष्कर्ष निकला है कि प्रति एकड़ ऊर्जा खपत प्रति एकड़ फसल उत्पादन से सीधे संबंधित है भारत जैसे देश के लिए यह अनुसंधान और भी महत्वपूर्ण है। हमारे यहाँ लगभग ७० प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में है और लगभग ६५ प्रतिशत जनसंख्या रोजगार के लिए सीधे कृषि क्षेत्र पर निर्भर है। औद्योगिक उत्पादन भी पूर्णत: ऊर्जा की उपलब्धता और खपत से सीधे जुड़ा है। अत: सतत विकास में भी ऊर्जा की निश्चित उपलब्धता महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसमें प्राकृतिक संसाधनों तथा पर्यावरण की क्षति को कम से कम करने के लिए गैर-परम्परागत तथा नवीनीकरण योग्य ऊर्जा स्रोतों का चयन करना होगा। ये स्रोत ऊर्जा के स्थिर स्रोत कहलाते हैं। इनके चयन में अग्रलिखित बातें महत्वपूर्ण हो सकती हैं - (१) ऊर्जा उत्पादन कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र की माँग को पूरा कर सके, (२) दोहन तथा संरक्षण के नए तरीकों का विकास तथा उपलब्ध उपायों में कुशलता हासिल कर प्राकृतिक संसाधनों तथा पर्यावरण की क्षति को कम से कम किया जाए।

पिछले कुछ वर्षों में देश में ऊर्जा की उपभोक्ता स्तर पर खपत लगभग ५.५ प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़ी है फिर भी विकसित देशों की तुलना में भारत में प्रति व्यक्ति ऊर्जा की खपत बहुत कम है। केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन द्वारा प्रकाशित 'भारत आँकड़ों में २०००' में दिए गए आँकड़ों के अनुसार भारत में प्रति व्यक्ति बिजली उत्पादन १९९९-०० में ५०७ किलोवाट अनुमानित है वहीं प्रति व्यक्ति बिजली की उपलब्धता (घरेलू) ६७.९ किलोवाट १९९८-९९ में अनुमानित थी। टेरी द्वारा (१९९७) में आँकड़ों के अनुसार भारत में अमेरिका की तुलना में प्रति व्यक्ति ऊर्जा खपत केवल ३ प्रतिशत तथ कोरिया की खपत का मात्र ९ प्रतिशत था। भारत आँकड़ों में '२०००' में दिए गए आँकड़ों के अनुसार १९९८-९९ में भारत में कुल ऊर्जा खपत का ३१.२ प्रतिशत कृषि में ३३.९ प्रतिशत औद्योगिक क्षेत्र में तथा २१.२ प्रतिशत घरेलू क्षेत्र में अनुमानित थी। लेकिन बढ़ती आबादी और औद्योगिकीकरण और कृषि के व्यवसायीकरण के कारण ऊर्जा की इस खपत को भी कायम रखना मुश्किल है। इस खपत को कायम रखने के लिए गैर-परम्परागत, नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों जैसे सौर ऊर्जा, जल ऊर्जा, पवन ऊर्जा, नाभिकीय ऊर्जा इत्यादि का विकास करने और उनका उचित दोहन करने की आवश्यकता है।

ग्रामीण विकास की मूलभूत आवश्यकता ईंधन और ऊर्जा की है। सर्वविदित है कि ईंधन और ऊर्जा के लिए वर्त्तमान में प्रयुक्त हो रहे परम्परागत ऊर्जा स्रोत (पेट्रो उत्पाद) अगले कुछ वर्षों तक ही हमारी ईंधन की समस्या हल कर पायेंगे। वैज्ञानिकों का मानना है कि दिनों-दिन बढ़ती आबादी के कारण बढ़ते आवास, पेयजल, खाद्यान्न आदि की समस्या के साथ-साथ ईंधन की बढ़ती माँग की समस्या बढ़ती जाएगी क्योंकि सारे पारंपरिक ऊर्जा स्रोत, कच्चा तेल १५ वर्षों तक, प्राकृतिक गैस २९ वर्षों तक कोक रहित कोयला २१९ वर्षों तक तथा खाना बनाने के लिए प्रयुक्त कोयला सिर्फ २१३ वर्षों तक हमारी वर्त्तमान आबादी की ईंधन तथा ऊर्जा की माँग को पूरा कर पाएँगे। इस स्थिति के आने पर हमारी क्या स्थिति होगी यह कल्पना करते ही हम सिहर उठते हैं।

इस स्थिति से उबरने के लिए हमें प्रकृति में उपलब्ध ऊर्जा के अक्षय स्रोतों (गैर परम्परागत) का सही स्वरूप में दोहन करना होगा ताकि वे नष्ट भी नहीं और हमारी माँग को सतत रूप में पूरा करते रहें। ये अक्षय ऊर्जा स्रोत हैं - सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जल ऊर्जा, भू-तापीय ऊर्जा आदि जिनसे हमारी ऊर्जा की भविष्य की आवश्यकताएँ पूरी हो जाएँगी। इन गैर-परम्परागत अक्षय ऊर्जा स्रोतों की विशेषता यह है कि इनके स्रोत शाश्वत और सुलभ हैं। इन पर आधारित प्रणालियाँ पर्यावरण मित्र होने के साथ-साथ प्रदूषण रहित भी हैं। वैज्ञानिकों द्वारा लगाए गए अनुमानों के अनुसार इक्कीसवीं शताब्दी के मध्य तक विश्व की लगभग १० प्रतिशत बिजली पवन ऊर्जा उत्पादकों द्वारा उपलब्ध कराई जाएगी। भारत में भी गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों के सतत विकास के लिए प्रयास किए जा रहे हैं इसके लिए भारत सरकार ने १९९२ में अपारम्परिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय की स्थापना की थी। इस मंत्रालय के द्वारा बायोगैस, बायोमास, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा, लघु पनबिजली ऊर्जा, महासागर ऊर्जा आदि नए, अक्षय तथा नवीनीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का विकास किया जाता है। ऊर्जा की बढ़ती मांग के कारण ऊर्जा संरक्षण की आवश्यकता महसूस की गयी। इसके लिए व्यर्थ-पदार्थों से ऊर्जा उत्पादन के प्रयास भी आरंभ हुये। इसके लिए १९८१-८२ में राष्ट्रीय बायोगैस विकास कार्यक्रम के अंतर्गत बायोगैस संयंत्रों की स्थापना की गयी है। इसके लिए त्रि-स्तरीय कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं पहले स्तर पर पारिवारिक स्तर पर बायोगैस संयंत्र स्थापित किए गए हैं। दूसरी परियोजना में सामुदायिक, संस्थानिक स्तर पर स्थापित बायोगैस संयंत्र है तथा तीसरे स्तर पर बायोगैस उत्पादन एवं तकनीकों के उपयोग हेतु अनुसंधान एवं विकास कार्यक्रम आते हैं। बायोगैस संयंत्रों की स्थापना से जहाँ ग्रामीण क्षेत्रों के वासियों के

Scanned with OKEN Scanner

ऊर्जा की समस्याएँ हल हुई हैं वहीं व्यर्थ पदार्थों की समस्या से भी छुटकारा मिला है। इन संयंत्रों में जैविक व्यर्थों के उपचार से बायोगैस का उत्पादन किया जाता है जो ऊर्जा उत्पादन में उपयोग होता है। हमारे देश में प्रतिवर्ष लगभग २.७ करोड़ टन ठोस उत्सर्जित पदार्थ और लगभग ४४० करोड़ घन मीटर द्रव पदार्थ देश के शहरी एवं नगरीय क्षेत्रों से उत्पन्न होता है जिसके उपयोग से १००० मेगावाट विद्युत पैदा की जा सकती है। इसके अतिरिक्त औद्योगिक कचरे से लगभग ७०० मेगावाट विद्युत का उत्पादन किया जा सकता है। इन व्यर्थ उत्सर्जित पदार्थों को उपयोग में लाने के लिए बायो मिथेनेशन विधि का विकास किया गया है। इस विधि में जैव उत्सर्जित पदार्थों से मिथेन का उत्पादन किया जाता है जो अच्छा ईंधन है। यह मिथेन ऊर्जा उत्पादन के काम आता है।

पवन ऊर्जा भी हमारे देश की ऊर्जा समस्या के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। १९९८ में भारत में ९९२ मेगावाट पवन ऊर्जा उत्पादित की गयी और पवन ऊर्जा उत्पादित करने वाले देशों में भारत चौथे स्थान पर था। १९९८ में ही वर्ल्ड वाच इंस्टीच्यूट ने भारत को 'विन्ड सुपर पावर' की उपाधि दी। २००० में भारत में पवन ऊर्जा का उत्पादन लगभग २००० मेगावाट पहुँच गया। पवन ऊर्जा के उपयोग में सबसे बड़ा लाभ यह है कि विन्ड टावर्स के बीच की दूरी ज्यादा होने के कारण उनके बीच की भूमि का उपयोग चारागाह या कृषि कार्यों हेतु किया जा सकता है साथ ही यह ऊर्जा पूर्णत: प्रदूषण मुक्त होती है पवन शक्ति के दोहन से पर्यावरण मित्र, लाभकारी तथा बेहद कम मूल्य पर ऊर्जा उत्पादित की जा सकती है। अमेरिका में किसानों ने अपनी भूमि पर विन्ड टावर्स स्थापित कर रखे हैं जिनसे ऊर्जा उत्पादन होता है तथा उससे कृषि कार्यों में भी बाधा नहीं पड़ती है। हमारे देश में पवन शक्ति से ऊर्जा उत्पादन की अपार संभावनाएँ हैं। आवश्यकता है उपलब्ध संभावनाओं का व्यवस्थित विकास करना। सौर ऊर्जा के दोहन की अपार संभावनाओं से भी हमारा देश भरा है। हमारे देश की धरती पर प्रतिवर्ष ५ लाख करोड़ किलोवाट घंटे सौर ऊर्जा पड़ती है जो

अंततः समस्या न केवल इन दोहन यंत्रों, संयंत्रों के उपयोग की है बल्कि उनके उपलब्धता की भी है। ये सभी ऊर्जा के अक्षय स्रोत हैं, इनसे न तो प्रदूषण फैलता है न ही ये पर्यावरण के किसी अन्य रूप में विपरीत प्रभाव डालते हैं लेकिन क्या ये वास्तविकता के धरातल पर उपलब्ध हैं?

हमारी ऊर्जा की कुल वार्षिक उपयोगिता के कई गुनी है। इस सौर ऊर्जा का दोहन कर कई कार्य किए जा सकते हैं इसके लिए सोलर कुकर, सोलर गीजर, सोलर लालटेन तथा इलेक्ट्रिकल तथा इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों को चलाने के लिए सोलर सेलों का विकास किया गया है। इन सौर यंत्रों के प्रयोग से बाधित बिजली आपूर्ति का भी फर्क नहीं पड़ता और बिजली की खपत भी कम होती है। इसके अलावा लघु पनबिजली परियोजनाएँ जो पवर्तीय क्षेत्रों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है भी पूरे देश की ऊर्जा समस्या के समाधान के एक महत्वपूर्ण अंग है। अंततः समस्या न केवल इन दोहन यंत्रों, संयंत्रों के उपयोग की है बल्कि उनके उपलब्धता की भी है। ये सभी ऊर्जा के अक्षय स्रोत हैं, इनसे न तो प्रदूषण फैलता है न ही ये पर्यावरण के किसी अन्य रूप में विपरीत प्रभाव डालते हैं लेकिन क्या ये वास्तविकता के धरातल पर उपलब्ध हैं? उदाहरणार्थ सौर लालटेन की बात करें, इसकी रोशनी मिट्टी के तेल के लालटेन से ज्यादा होती है साथ ही इससे प्रदूषण भी फैलने का कोई प्रश्न नहीं उठता साथ ही साथ मिट्टी के तेल का खर्च भी खत्म हो जाता है। लेकिन इसकी कीमत ने आम जनता को इससे दूर कर रखा है। आम भारतीय एक बार में ३०००-४००० रुपए निवेश करने की स्थिति में नहीं होता। अत: यह अपने मूल्य के कारण अपनी क्षमता से कम उपयोगी है। अगर इन प्रौद्योगिकीयों को बढ़ावा दिया जाए तो देश से ऊर्जा समस्या पूर्णत: खत्म हो सकती है। पूरे देश के सम्पूर्ण छ: लाख गाँवों के विद्युतीकरण की चर्चा तो की जाती है लेकिन यह नहीं बताया जाता कि उन्होंने कई गाँवों को इस कारण छोड़ रखा है कि वे गाँव दुर्गम स्थानों पर हैं और वहाँ विद्युत पहुँचाने में आई लागत भी वापस नहीं हो पाएगी। साथ ही इन छ: लाख गाँवों में से एक लाख से ज्यादा गाँव बिजली की सुविधा से वंचित है और जहाँ बिजली है भी वहाँ मुश्किल से २५ प्रतिशत घरों में बिजली कनेक्शन है। फिर बिजली की बढ़ती माँग और माँग के अनुरूप उत्पादन नहीं बढ़ने के कारण उन क्षेत्रों को कितनी बिजली मिल पाती होगी इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इन सभी क्षेत्रों के बिजली समस्या के समाधान के लिए इन तक दूसरे क्षेत्रों से बिजली पहुँचाना महँगा पड़ता है इसके लिए इन क्षेत्रों को विद्युत उत्पादन में आत्मनिर्भर बनना होगा। आत्मनिर्भर बनने के लिए उसी क्षेत्र में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग सर्वोत्तम होता है। इसमें भी पवन, सौर या लघु पनबिजली ऊर्जा स्रोत सर्वाधिक उपयोगी हो सकते है ऊर्जा उपलब्धता में आत्मनिर्भर होने पर गाँवों में विभिन्न प्रकार के उद्योग धंधों का विकास होगा। कृषि में भी उत्पादन बढ़ेगा और गाँव की शहरों पर निर्भरता खत्म होगी और गाँव की शहरों पर निर्भरता खत्म होगी और गाँव आत्मनिर्भर होंगे जिससे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का 'ग्राम स्वराज' के रूप में देश को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होगी। भारत गाँवों का देश कहा जाता है और गाँवों के आत्मनिर्भर होने पर देश भी व्यापक स्तर पर आत्मनिर्भर होगा। देश के आयात बिल का सबसे बड़ा भाग पेट्रो पदार्थों के आयात का होता है जिसका उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में ईंधन के रूप में होता है। पवन ऊर्जा या सौर ऊर्जा (गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों) से उत्पादित विद्युत का उपयोग कर यातायात के साधन चलाए जा सकते हैं जो न केवल पर्यावरण मित्र होंगे बल्कि पेट्रो आयात बिल को भी शून्य के स्तर पर लाने में सहायक होंगे। साथ ही तटीय क्षेत्रों में महासागरीय ऊर्जा के दोहन की अपार संभावनाये हैं। भारत का विस्तृत समुद्रतट महासागरीय ऊर्जा के दोहन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। देश हित में हमें अपने गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों का व्यापक विकास करना होगा ताकि देश ऊर्जा उत्पादन में आत्मनिर्भर हो सके। ■

Scanned with OKEN Scanner

शिव-संकल्प का द्योतक है त्रिपुण्ड के नीचे दमकती रोली

■ डॉ॰ प्रमोद कुमार दूबे

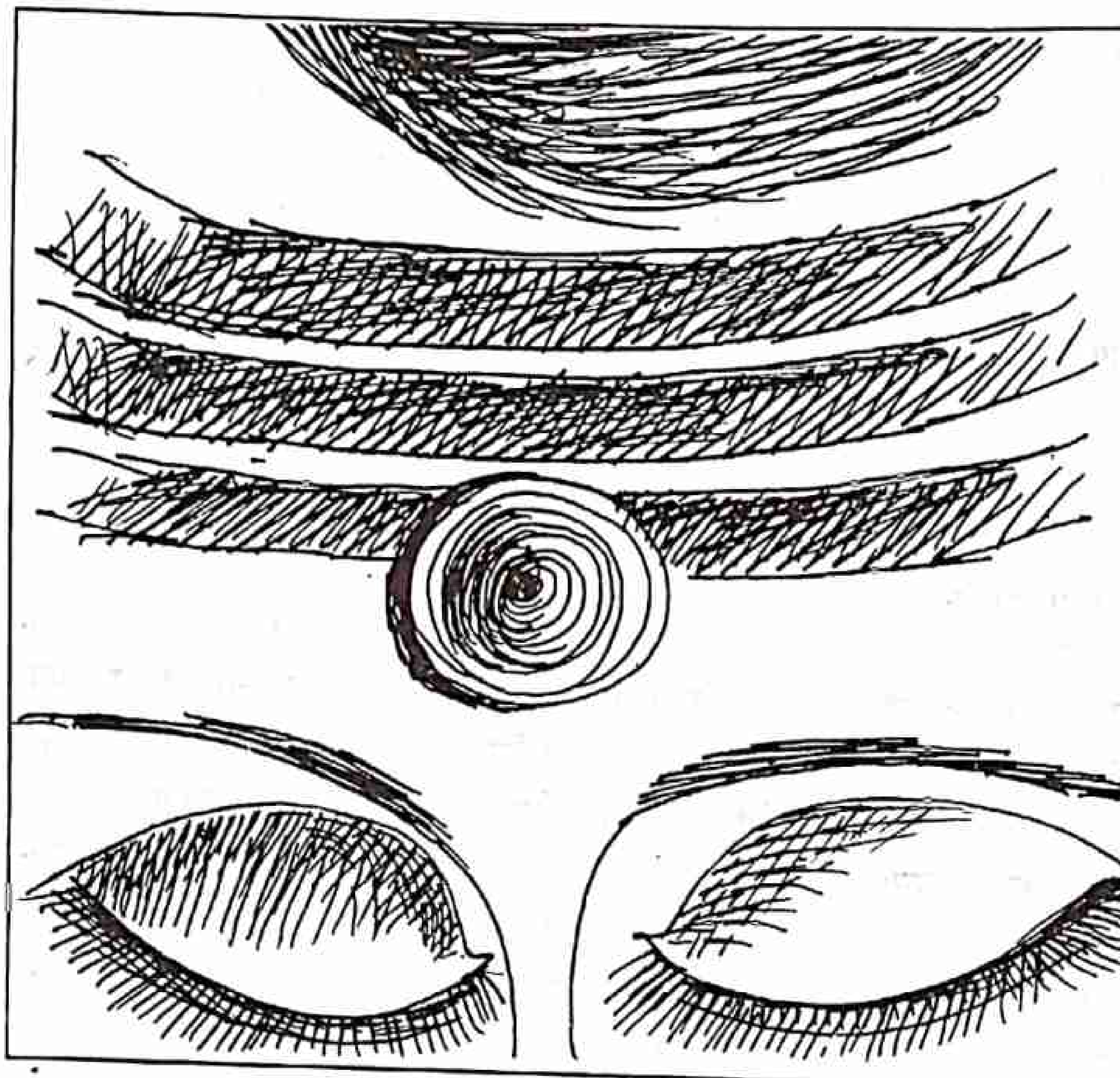

भस्म होने की कठोर तपस्या क्यों होनी चाहिए? क्योंकि इसके बिना नवीन होने की कोई राह है ही नहीं। चिर प्रासंगिकता के लिए, शाश्वत और सनातन होने के लिए महाकाल का शून्य प्राप्त कर लेना आवश्यक है। इसी शून्य से नित्य नूतन होकर निकलती रही है, हमारी संस्कृति, हम बार-बार जनमते हैं इसी देह में अथवा इसे छोड़ नई देह में – पुनर्नवा है हमारी संस्कृति।

रामकृष्णपुरम से गुजरने वाली दिल्ली की बसों में बैठा हुआ मैं तब तब अपने मन को खुली आँखों दिखने वाले दृश्यों से दूर स्मृति के लोक में भागता हुआ पाता हूँ, जब किसी दक्षिणायत स्त्री-पुरुष के माथे पर भस्म की आड़ी रेखा के नीचे लगी रोली का तिलक देख लेता हूँ। कहाँ खो जाता है मेरा मन? कहाँ-कहाँ विचरने लगता है – मेरा मन? क्या-क्या सोचने लगता है वह? सबसे पहले यादों के संसार में भटकते मेरे मन को नियमपूर्वक प्रतिदिन त्रिपुण्ड और रोली या रक्त चंदन अपने उन्नत भाल को सुसज्जित करने वाले अपने मामा के प्रसन्न मुख की यादें स्नेह से गुदगुदा देती है; वह मुझे कभी-कभी अगस्त मुनि कहा करते थे। मैं उनकी दृष्टि में अगस्त मुनि के किसी विशेष चरित्र का प्रतिनिधि था। मैं नहीं, मेरा मन कभी-कभी अगस्त मुनि की अत्यल्प भूमिका जरूर निभा रहा है। विंध्यपर्वत को पार कर अगस्त मुनि भारत के दक्षिणी प्रदेशों में गए थे। वह विंध्याचल से कह गए, जब तक मैं न लौटूँ, तुम ऊपर न बढ़ना। न वह फिर लौटे और ना बिंध्य ने अपना सिर ऊपर उठाया।

एक वृद्ध तमिल विद्वान से मैंने सुना था कि प्राचीनतम तमिल साहित्य में अगस्ति का उल्लेख मिलता है। पौराणिक आख्यानों में अगस्त मुनि के प्रसंग आते हैं। उन्होंने सारा समुद्र पी लिया था, यह बात जनश्रुतियाँ में भी व्याप्त है। लेकिन मेरे कहने से विंध्यपर्वत में उगने वाली कोई घास भी अपना विकास नहीं रोक सकती, समुद्र पी जाने की तो कल्पना भी कठिन है। फिर मैं अपने मामा की नजर में अगस्त मुनि के किस चरित्र को दुहराता दिख रहा था? मेरे मन का जो भूलक्कड़पन है शायद उसीमें मेरे मामा को अगस्त मुनि दिख जाते होंगे। अगस्त मुनि लौटना भूल गए, लौटते तब तो विंध्यपर्वत ऊपर बढ़ता, क्या पता अब विंध्यपर्वत को भी ऊपर बढ़ने की बात भूल गई हो? और इसीके साथ भारत के दक्षिणी और उत्तरी प्रदेशों में आपसी समानता के स्पष्ट दृश्य दिखाई देने लगे होंगे, यद्यपि मेरी जानकारी में कोई ऐसा कालखंड नहीं रहा, जब हमारे दक्षिण और उत्तर के भू-भागों के जन-जीवन में धार्मिक और राष्ट्रीय चेतना का प्रवाह थमा हो। उत्तर में शिव का कैलास, श्रीराम और श्रीकृष्ण की जन्म भूमियाँ हैं तो दक्षिण में भी केरल की भूमि जगद्गुरु शकराचार्य के आविर्भाव से पुनीत हुई। तमिलनाडु को रामानुजाचार्य और आंध्र को वल्लभाचार्य के आविर्भाव का गौरव प्राप्त हुआ। इन राष्ट्र गुरुओं के श्रीचरणों में बैठकर भारतवासी ज्ञान-दीप्त होते रहे। अलग-अलग प्रचलित लोकाचारों और दैशिक गुणों के अंतर को

Scanned with OKEN Scanner

उछालने के प्रयास अँग्रेजों जैसी कुटिल बुद्धि से हो सकते है सो वे हुए होंगे। जिसका कोई अर्थ नहीं। लेकिन क्षेत्रीय दूरी को मेड़ बनकर बढ़ाने वाले विंध्य को अगस्त ने पहले ही रोक दिया था – ठहरे रहो विंध्य! मैं जब लौट आऊ तब ऊपर बढ़ना।

मेरा अगस्ती-मन भस्म के नीचे लगी होली की लालिमा देखकर आसपास के दृश्यों और कोलाहल को बाणभट्टकृत कादम्बरी में वर्णित विंध्यावटी के वन में हो रहे शबर-शिकारियों को कोलाहल समझकर भूल जाता है। गंतव्य की ओर बस दौड़ती जा रही होती है और मेरा मन भी दौड़ता फिर रहा होता है। न जाने कहाँ-कहाँ। इस दौड़ में मेरा मन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचे हुए साहित्य में भी कभी-कभी चक्कर लगा आता है, जहाँ से मेरे मन को कालिदास के निकट जाने के लिए किसी सांसद की तरह यात्रा की उत्तम सुविधा प्राप्त हो जाती है। और वहाँ पहुँचने के बाद कम-से-कम पाँच तारा होटलों में ठहरने का अच्छा इंतजाम भी हासिल हो जाता है।

मेरा अनुमान यह है कि कालिदास का साहित्य त्रिपुण्डी-रचना है। मेरे मतानुसार त्रिपुण्डी रचना के कायल गोस्वामी तुलसीदास भी रहे हैं और आचार्य द्विवेदी भी इसके शिकार माने जा सकते है। मैं यह स्थापना आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के सभी शिष्यों, आलोचकों, सहित उनके कम्युनिस्ट वंशीय आलोचकों के सम्मुख करना चाहता हूँ। इसके बावजूद कि जब से डॉ० रामविलास शर्मा का विशाल कृतित्व प्रकाश और चर्चा में आता जा रहा है हिन्दी साहित्य के मौजूदा तत्वज्ञों को किसी दूसरी दिशा में ताकने का अवकाश नसीब नहीं हो रहा है। मार्क्सवादी आलोचक नामवर सिंह कभी आचार्य द्विवेदी का पक्ष लेकर दूसरे मार्क्सवादी आलोचक डॉ० रामविलास शर्मा द्वारा स्थापित आचार्य शुक्ल के पक्ष पर हमले किया करते थे। फिर रामविलास जी का जवाबी हमला होता था। इससे प्रकाशक मालोमाल होते, पाठक आज

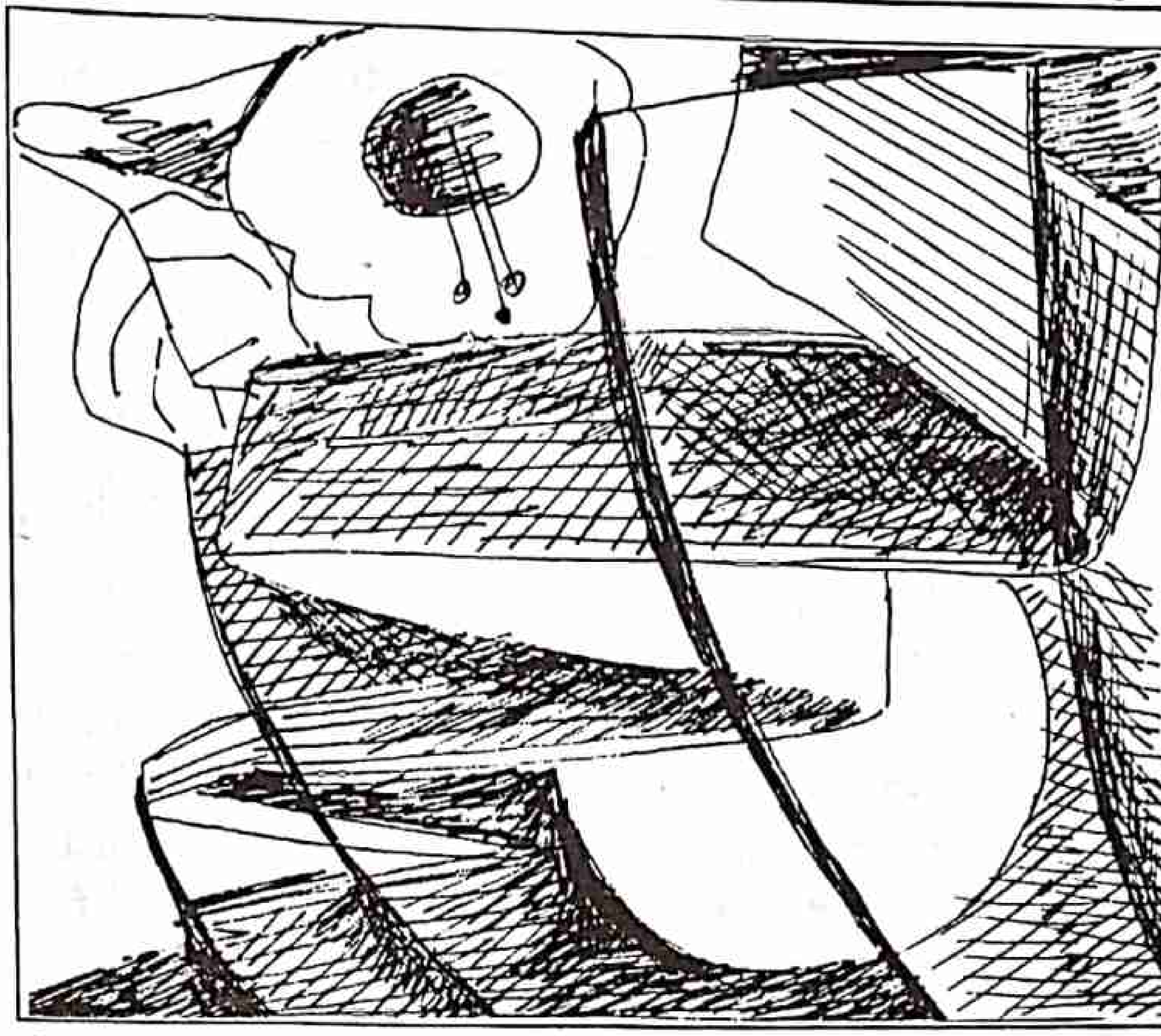

के क्रिकेट दर्शकों की तरह गरमाहट अनुभव करते, इसी के साथ विद्यार्थियों में भी कुछ लोग डॉ० शर्मा की ओर और कुछ डॉ० सिंह की ओर खिंच जाते। इनके चेहरों पर भी बौद्धिक तनाव की लकीरें उग आती थी बात सिर्फ इतने तक पूरी नहीं हो जाती कि कितना स्कोर किस का है, इस बहस को तय करने में हर दिन कई कप चाय परवान चढ़ जातीं। कैसा स्तरीय सुखानुभव उस समय रहा करता था, इस बात को आज के क्रिकेट दर्शक तो कत्तई नहीं जान सकते। उनके मुँह से 'आउट' की हूँफ भर सुनाई दे पाती है। इतनी कठिन यातना की मुहबंदी तो कभी भारतवासियों ने झेली ही नहीं थी – न इंदिरा गाँधी के आपातकाल में और न फिरंगियों या मुगलों के शासन काल में। ऐसी मुहबंदी तो रावण भी अपने राज में विभीषण पर लागू नहीं कर सका था। एक दिन लोग यह महसूस करेंगे कि क्रिकेट के दृश्यों को देखकर मनोक्रीड़ा में विचरण करना समाज के वैचारिक शक्ति के पतन में कितना सहयोगी रहा। मेरे मतानुसार इसी मनोक्रीड़ा द्वारा फैलाई गई पंगुता का दुष्परिणाम है कि आज हिन्दी-साहित्य के रथी-महारथी डॉ० रामविलास शर्मा के कृतित्व के आगे अभिभूत हैं। उनमें यह साहस शेष नहीं है कि वे कई जवाबी कार्रवाई कर सकें। यह सच है कि डॉ० नामवर सिंह ने आचार्य द्विवेदी की रचनाओं के विराट स्वरूप को कभी खड़ा नहीं किया, उन्होंने बार-बार चेतकर भी दूसरी परम्परा की, कुटिलतापूर्वक खोज की। डॉ० रामविलास शर्मा ने भी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा स्थापित तुलसी के लोकमंगल को अपने मार्क्सवादी विचारधारा के लिए एक कड़ी के रूप में भ्रामक और अनावश्यक उपयोग किया। संभवत: उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि मंगल स्वयं किसी व्यवस्था की संरचना को तय करता है इसकी व्याख्या सुनिश्चित है। इसके स्पर्श मात्र से कार्लमार्क्स का सारा परिश्रम व्यर्थ हो सकता है। हमें प्रसन्नता है कि इन महारथियों ने आचार्य द्वय को अपनी-अपनी पूर्व पीठिका के रूप में स्वीकार किया और आगे की रचनात्मक दिशा सुनिश्चित की। कोई चाहे तो इन पूर्व पीठिकाओं से पुन: रचनात्मक दिशा तय कर सकता है। इस कार्य में रोक-टोक करने वालों से मेरी लड़ाई जरूर ठन सकती है। कम-से-कम आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मामले में तो कोई समझौता मंजूर नहीं हो सकता। कारण यह कि ठीक यहीं से मेरे जैसे अल्पज्ञ कालिदास के रचना लोक में पहुँचकर शाश्वत सृजन का आनंद

Scanned with OKEN Scanner

मेरा अनुमान यह है कि कालिदास का साहित्य त्रिपुण्डी-रचना है। मेरे मतानुसार त्रिपुण्डी रचना के कायल गोस्वामी तुलसीदास भी रहे हैं और आचार्य द्विवेदी भी इसके शिकार माने जा सकते है। मैं यह स्थापना आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के सभी शिष्यों, आलोचकों, सहित उनके कम्युनिस्ट वंशीय आलोचकों के सम्मुख करना चाहता हूँ।

ले सकता है। इसीलिए मैंने इन्हें 'त्रिपुण्डी-रचना' कहने का अलग से साहस किया है। आपको इस शब्दावली में असाहित्यिकता दिख रही हो तो आप एक शब्दावली और प्रयोग कर सकते है त्र्यम्बक कृतित्व। मैं यह शब्दावली देने का साहस क्यों कर रहा हूँ, मैं इसे स्पष्ट कर रहा हूँ।

आपने पढ़-सुन रखा होगा, तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में बता रखा है कि श्रीराम की कथा को रचकर महादेव शिव ने अपने मानस में धर रखा था। समय आने पर उन्होंने इस कथा को प्रकट करने की विवशता अनुभूती। जैसे गंगा लोक में आने से पहले ब्रह्मा की कमंडलु में रहीं, रामकथा भी लोक में अवतरित होने के पूर्व शिव के मानस में थी। त्र्यम्बक शिव के मनोजगत से प्रसूत होने के कारण मैंने तुलसीदास की कृति 'रामचरित मानस' को त्र्यम्बक कृतित्व अथवा त्रि-पुण्डी-रचना कहा। लेकिन कलिदास ने अपने रचना-संसार को शिव के मानस में स्थित होने की बात नहीं कही है। फिर उनकी रचना त्रिपुण्डी कैसे कही जा सकती है? यह प्रश्न उठ सकता है परंतु यह प्रश्न मामूली है। कालिदास के पाठक भली-भाँति जानते हैं कि कामदेव के भस्म हो जाने के बाद भग्न मनोरथ हुई पार्वती पुनः सौभाग्य को प्राप्त हुई। शिव उनके खरीदे हुए दास हो गए। किस मूल्य से खरीदा पार्वती ने शिव को? तपस्या के मूल्य से खरीदा पार्वती ने शिव को। उन्होंने अपने निनिन्द रूप को तप की अग्नि में भस्मी भूत कर दिया, अपने अस्तित्व को शिव में पूर्णतः विलीन कर देने के बाद वह स्वयं शिव बन गई। फिर तो शिव उनके अतिरिक्त और कहाँ जाते। है न, इसमें स्वयं की सत्ता को मिटा कर वरेण्य को प्राप्त कर लेने का संदेश। यही प्रक्रिया कालिदास ने शकुन्तला के साथ भी दुहराई है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'बाण भट्ट की आत्मकथा' पढ़िए या अन्य उपन्यास अथवा अन्य रचनात्मक कृतियाँ, एक बात तो स्पष्ट दृष्टि गोचर होगा कि तपस्या से उज्ज्वल होते चरित्रों को आचार्य द्विवेदी ने बड़ी सजगता से रखा है, वह संसार-पंक में सने हुए किसी भी कोयला सरीखे चरित्र को सोना बना देने में कोई संकोच नहीं किया। पतित से पतित चरित्र को शिव-संकल्प में समायोजित किया, उसे बार-बार तपाया और परम दीप्ति से भर दिया है। आज जब मैं सामाजिक संदर्भों में इस प्रक्रिया को देखने का प्रयास करता हूँ तो मुझे लोक से लोकत्तर की ओर-तम से ज्योति की ओर शोषित से शासक की ओर समाज को विकसित करने का सीधा मार्ग दिखता है। और तब मैं विचार करने पर विवश होता हूँ कि क्या है यह भस्म? और क्या है यह रोली?

भस्म है तप - शून्य - कालातीत अवस्था, श्मशान - पंचमहाभूतों की आदि स्थिति, भगवान शिव इन्हीं भूतों के नाथ हैं, असृष्ट मूल प्रकृति के स्वामी, सृष्टि रचना की पूर्वधरा। यहीं से सृष्टि प्रारंभ होती है, लोक बनते हैं, प्राणियों के अस्तित्व रचते हैं। सृष्टि बनाने वाली शिव की शक्ति को भस्म की रेखाओं के नीचे लगी लाल रोली या रक्त चन्दन के तिलक से इंगित करते हैं। यही शिव की रचना शक्ति है, यही उनके संकल्पित जगत का द्योतक है। जब शून्य से सृष्टि का सृजन होता है तभी वह निर्मल होता है, भेद और क्लेश से रहित होता है। यही सृजन समग्र होता है। इसमें सभी रूचि भिन्नताएँ समाहित होकर अभेद हो जाती हैं परस्पर द्वंद्व भूलकर एकात्म हो जाती हैं। कालिदास, तुलसीदास और हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे रचनाकार इस रहस्य को अवश्य जानते थे दूसरे रचनाकार भी इसे अवश्य जानते होंगे। तय भी यही था कि इस बात को दक्षिण से उत्तर तक पूरब से पश्चिम तक हर गुरु दीक्षित भारतवासी अवश्य जाने – भेद और अभेद के मंगलमय संबंध को जरूर पहचाने। लेकिन, कुछ गड़बड़ी आ गयी। विभेदों में लोग उलझ गए, जो भी – जहाँ भी जितना सांसारिक सुख-साधन दिख रहा है, उसी में मारकाट, लूट-पाट मच गया, सृजन की धारा अवरुद्ध हो गई। शिव और शिव के संकल्प का बोध कहीं लुप्त हो गया। शिव के अनुशासन में विकसित होने वाले सुख का रास्ता भूल गया, भस्म रेखा के नीचे लगने वाली रोली का अर्थ कही खो गया। धर्म के आलम्ब से प्राप्त होने वाले अर्थ और काम स्वाद भूल गया।

२५ सितम्बर २००१ को पं० दीनदयाल उपाध्याय की जयंती के आयोजन में देश के सम्मानित विद्वान रचनाकार श्री विद्यानिवास मिश्र 'विराट पुरुष और पुरुषार्थ' विषय पर व्याख्यान देने आए थे। उन्होंने अमावस्या के दिन चंद्रमा के पूर्णतःविलीन हो जाने और पुनः एक-एक तिथि के साथ अस्तित्व में आते जाने की निरंतर घटित होने वाली खगोलीय घटना का उल्लेख करते हुए बताया था कि अमावस्या में मृत्यु नहीं है इसमें सृजन का अमृत है इसीलिए अमावस्या को अमृता कहते है। यही अमावस्या है, भस्म। और इसी अमृता शिव का सृष्टि-धर्म है रोली की लालिमा।

Scanned with OKEN Scanner

भस्म होने की कठोर तपस्या क्यों होनी चाहिए? क्योंकि इसके बिना नवीन होने की कोई राह है ही नहीं। चिर प्रासंगिकता के लिए, शाश्वत और सनातन होने के लिए महाकाल का शून्य प्राप्त कर लेना आवश्यक है। इसी शून्य से नित्य नूतन होकर निकलती रही है, हमारी संस्कृति, हम बार-बार जनमते हैं इसी देह में अथवा इसे छोड़ नई देह में – पुनर्नवा है हमारी संस्कृति।

हमारी संस्कृति कोई जड़ीभूत कलाचार (कल्चर) नहीं है, जो हमारी जाति की रूढ़ पहचान बनकर ढोई जाती रहे, जीर्ण-शीर्ण मलीन हो जाने पर भी उसे बचाकर रखने की विवशता हो। इसमें समय के साथ नए प्रकाश पुञ्ज फूटते रहते हैं यह कभी धूमिल नहीं होती, कभी कालवाही नहीं होती। ऐसा क्यों है?

इसलिए है कि शाश्वत शून्य या महाकाल के स्रोत से हमारे संकल्प अग्रसर होते हैं। हम शिव-संकल्प से जगत की प्रवृतियाँ में प्रवेश करते हैं। शिव है त्रिपुण्ड का भस्म-भवभूति और संकल्प है रोली या रक्त चंदन का गोल तिलक। हमारे ललाट पर सुशोभित होने वाला यह त्रिपुण्ड हमारे विचारों में, इच्छा और संकल्प में उतर कर कर्म में प्रकट होता रहे तो हमारी संस्कृति कभी विलुप्त नहीं हो सकती। संस्कृतिधर्मिता के साथ एक कठिन व्रत अवश्य जुड़ा हुआ है – भस्मीभूत होने का व्रत। यह मरजीवापन सबके वश की वात नहीं, संसारिक कर्मों में प्रवृत अधिकांश लोग अपनी वासनाएँ छोड़ कर भस्मीभूत होने के लिए तैयार नहीं होंगे और सबको भस्मीभूत होना भी नहीं चाहिए। सबको महाकाल के संस्पर्श में जीने की बाध्यता है भी नहीं।

यह दिव्य प्रसाद तो मेरे जानते जन्म के साथ ही निर्धारित होता है। एक काम हम अवश्य कर सकते हैं कि ऐसे दिव्य जन्म वाले महान पुरुषों को पहचानें उनके आदेशित मार्ग पर चलें, उनका अनुशासन मानें, उन्हीं के विराट संकल्प में विभेद नहीं होता, उन्हीं के संकल्प में सबके कल्याण का अमृत रहता है। ■

(पृष्ठ ३० का शेष....)

भारत में बहुराष्ट्रीय निगमों ....

हुई हैं क्योंकि इनसे सभी मुख्य शेयरधारक, पेशेवर प्रबंधकों, नामित निदेशकों तथा निदेशक मंडल जो किसी बड़ी कंपनी को संचालित करते है, के संबंधित भूमिकाओं पर प्रभाव पड़ा है।

विवाद निपटान तथा कॉरपोरेट प्रशासन

व्यापारिक विवादों को निपटाने के लिए नए वैकल्पिक तरीके अपनाना बेहतर कॉरपोरेट प्रशासन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है, क्योंकि इनसे समय, पैसे की बचत होगी, साथ ही वे विवादों का जल्दी समाधान करेंगे और व्यापारिक रिश्तों के सुधार में सहायता करेंगे। विकसित राष्ट्रों की बहुत सी कंपनियों ने इन तरीकों का उपयोग सीख लिया है और इसका लाभ उठा रही हैं। कंपनियों ने एक पूरी नयी व्यवस्था की स्थापना की है जिसमें लोगों को समस्याओं के समाधान, विवाद परिहार, बातचीत तथा विवादों को निपटाने का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। कंपनियों के अपने विवाचकों का एक बोर्ड होता है जिसके निर्णय कंपनी को मानने होते हैं। भारतीय कॉरपोरेटों को भी इस व्यवस्था को स्वीकार करना चाहिए जिसमें कोर्ट में जाने से पहले ही कोर्ट के बाहर ही विवाद समाप्त हो जाए। उन्हें अपने अंदर ही विवादों को निपटाने की व्यवस्था विकसित करनी होगी।

निष्कर्ष

सामाजिक तथा आर्थिक कल्याण में महत्वपूर्ण योगदान देने के कारण संयुक्त स्टॉक कंपनियों को सबसे प्रभावी ढंग से कार्य करना चाहिए। बेहतर कॉरपोरेट प्रशासन इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। अच्छे कॉरपोरेट प्रशासन के लिए कंपनियों के कार्यकलापों से संबंध रखने वाले शासकीय नियामक प्राधिकरणों, निदेशक मंडल, लेखा-परीक्षकों तथा शेयरधारकों इत्यादि सभी का संकेन्द्रित प्रयास आवश्यक है। सरकार को प्रासंगिक नियमों में आवश्यक बदलाव कर अच्छे कॉरपोरेट प्रशासन की संहिता तैयार करनी चाहिए। निदेशक मंडल की संरचना उपयुक्त होनी चाहिए और इसमें अनुभवी तथा ज्ञानी लोग होने चाहिए। लेखा-परीक्षक को अपना काम स्वतंत्र तथा पेशेवर रूप में करना चाहिए। शेयरधारकों को यह स्वीकार करना होगा कि उन्हें अपने हितों की रक्षा के स्वयं आगे आना चाहिए न कि इसे दूसरों पर छोड़ देना चाहिए। (अनुवाद : धीप्रज्ञ द्विवेदी)

अब रेलवे का निजीकरण

विनिवेशीकरण के इस तूफानी दौर में भारतीय रेल के क्षेत्र में भी निजी पूँजी निवेश को लेकर मंथन का दौर शुरू हो गया है। विदेशी परस्त विशेषज्ञों का मानना है कि रेलवे का भी निजीकरण होना चाहिए। निजीकरण किस रूप में होगा इस विचार-विमर्श हेतु एक दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन विनिवेशीकरण में रेलवे निवेश नियोजन और पुनर्सरचना की रणनीतियाँ नामक विषय पर राजधानी के एक पाँच सितारा होटल में आयोजित हुई। रेलवे बोर्ड के वर्तमान व पूर्व अधिकारियों, शिक्षाविदों, रेलवे यातायात विशेषज्ञों और उद्योगों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। पाँच सितारा होटल में बैठकर इन लोगों ने द्वितीय श्रेणी में यात्रा करने वाले यात्रियों की चिंता व्यक्त की। संगोष्ठी का आयोजन सेंटर फॉर ट्रांसपोर्टेशन रिसर्च एंड मैनेजमेंट (सी-ट्रैम) ने किया था। इस अवसर पर अधिकांश वक्ताओं ने रेलवे में निजी पूँजीनिवेश की वकालत की। उन्होंने कहा कि कनाडा, मलेशिया आदि देशों में रेलवे में निजीकरण को बढ़ावा मिल रहा है।

रेलवे के निजीकरण के लिए गठित मोहन प्रकाश समिति की रिपोर्ट को इसके पहले रेल मंत्रालय ने खारिज कर दिया था और विनिवेश के इन कदमों का विरोध स्वदेशी जागरण मंच ने भी किया था।

Scanned with OKEN Scanner

अहमदशाह मसूद को मारने के लिए रचे गए साजिश में कोई कम सनसनीखेज प्रकरण नहीं है। केवल लादेन और उमर के वैवाहिक प्रसंगों और उत्तरी कमान के अहमद शाह मसूद की मौत को ही फिल्म के उपयोग में बिक्री की नजर से लाया जाए तो बड़ी कमाई हो सकती है।

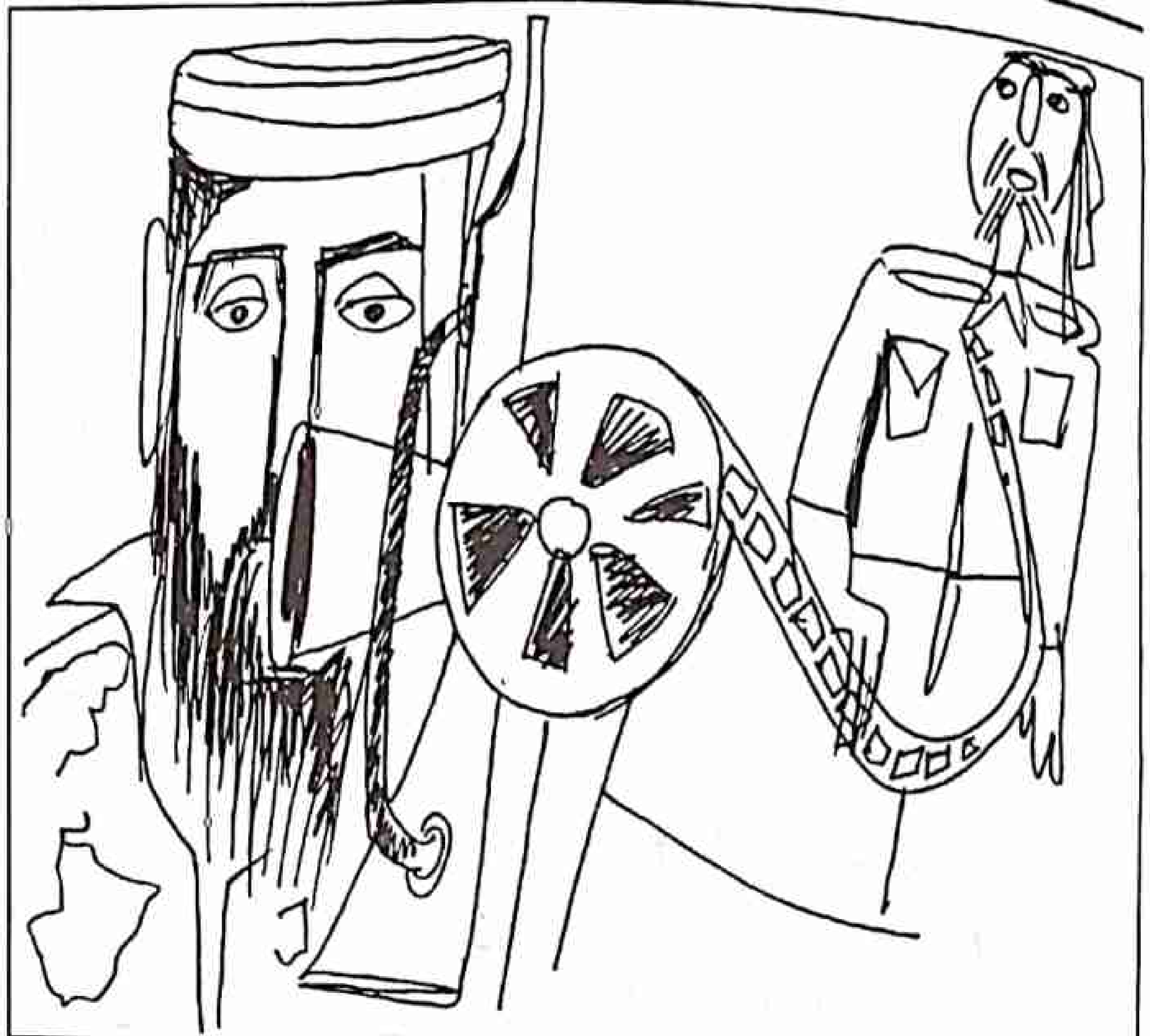

अफगानिस्तान में फिर खुले फिल्महॉल

■ रघु शास्त्री

अफगानिस्तान से तालिबानी शासन के सफाए के साथ ही वहाँ के सिनेमाहॉल, टी.वी. रेडियो के बंद पड़े मनोरंजक कार्यक्रम शुरू हो गए। वहाँ की आम जनता में खुशी की लहर दौड़ गई। प्रश्न यह उठता है कि तालिबान को इन जन-माध्यमों से नफरत क्यों थी? क्या वह सचमुच मानते हैं कि मनोरंजक कार्यक्रम समाज के चरित्र को नीचे गिराते हैं, समाज के चरित्र को ऊपर उठाने के लिए मनोरंजक कार्यक्रमों को बंद कर दिया जाना चाहिए? यदि ऐसा होता तो तालिबान शासकों के निजी जीवन में मनोरंजक साधनों का अभाव होता यानी वे जानवर की तरह ही जीना पसंद करते कोई रीति-रिवाज, अच्छे पहनावे, पगड़ी-दाढ़ी, साबुन तेल का इस्तेमाल अमूमन नहीं करते। और न फिर यह पहेली भी सूचना व्यवसायियों के हाथ लगती कि ओसामा बिना लादेन मुल्ला उमर का दामाद है या मुल्ला उमर ओसामा का दामाद? या दोनों एक दूसरे के दामाद और एक दूसरे के ससुर हैं? नहीं चाहकर भी दुनियाभर के लोगों को इन तालिबानी शासकों ने इस सूचना से मनोरंजन के लिए मसाला दिया। मतलब यह कि मनोरंजन रोका नहीं जा सकता मन का स्वभाव ही है – रंजन करना, कुछ रंग-रोगन, कुछ गीत-नृत्य। बिल्कुल रेगिस्तान होकर मनुष्य रह नहीं सकता। आतंक से बहने वाले खून की लाली भी पिशाचों को मनोरंजन देती है। अहमदशाह मसूद को मारने के लिए रचे गए साजिश में कोई कम सनसनीखेज प्रकरण नहीं है। केवल लादेन और उमर के वैवाहिक प्रसंगों और उत्तरी कमान के अहमद शाह मसूद की मौत को ही फिल्म के उपयोग में बिक्री की नजर से लाया जाए तो बड़ी कमाई हो सकती है। मनोरंजन के अच्छे तगड़े और वास्तविक प्रकरण छोड़ने वाले तालिबानियों को बेजान, डरे सहमे, अप्रमाणित और जमाने से घिसे-पिटे मनोरंजन के साधनों के असर से इतना भय नहीं करना चाहिए था। सियासत सबकुछ नहीं होती, सियासत – सियासत के लिए नहीं होती, वह आवाम की हिफाजत के लिए होती है। शासन एक पूजा की थाल है जिससे देश की जनता की पूजा करनी होती है। शासन और जनता के बीच सूचना, मनोरंजन और दायित्व जुड़ा होता है जन-माध्यम उसकी भूमिका परतंत्र कर देने से जनमानस कुण्ठित हो जाता है। उसे गुलामी का अहसास बढ़ जाता है। यही हुआ अफगानिस्तान की जनता के साथ भी। तालिबान ने हर ओर पाबंदियाँ लागू कर यह समझा कि वह अपनी हुकूमत कारगर करके दिखा रहा है। बामियान की बुद्ध मूर्ति तोड़ते हुए भी मुल्ला उमर ने दुनिया भर के लोगों की इच्छा कुचलने में संकोच नहीं किया था।

Scanned with OKEN Scanner

इस अनीति की फसल काटने के बाद वह अपनी छोड़ी हुई यादों का टेप एक बार फिर सुनकर देखे क्या उसे याद कर अफगानी जनता आँसू बहाने वाली है? वह तो उत्तरी कमान से मिली राहत को ही महत्व देगी। मनोरंजक कार्यक्रमों को मिली छूट की छोटी किन्तु महत्वपूर्ण घटना से आजादी और तालिबान के आपसी विरोध को अफगानी अनुभव कर रही है।

एकाएक मनोरंजक कार्यक्रमों को देखने सुनने के लिए टूट पड़ी अफगानी जनता का मनोवैज्ञानिक पड़ताल करें तो यह साफ नजर आ जाएगा कि शताब्दियों से युद्ध की लपटों में जीते आम अफगानी का मानसिक विस्तारा काफी सिमट गया है। युद्ध और वासना (वार एण्ड पैशन) तक बहुतायत जनजीवन का दायरा संकुचित हो चुका है। हिन्दूकुश पर्वत की उपत्यकाओं का यह क्षेत्र कभी पाणि और यास्क जैसे विद्वान को पैदा कर चुका है पर, इस्लाम के आने के बाद इसका पतन इस हद हुआ है कि सिर्फ मार-काट और मौज-मस्ती का सामान्य स्तर रह गया।

अफगानिस्तान को मनोविस्तार की पहली सीढ़ी मनोरंजक जन-माध्यम हो सकता है इसके बाद आर्थिक पक्ष इन्हें स्वाभाविक रूप से आकर्षित करेगा। और इसी के साथ अपने इतिहास और उन्नति का विचार भी प्रेरित करने लगेगा। ऐसी स्थिति में मनोरंजक साधनों की छूट मिलनी उचित है। यह सत्य है कि मनोरंजक साधन आदर्श विहीन होंगे तो उन्नति की सोंच के बदले पतनकारी प्रवृतियाँ बढ़ सकती हैं। इससे बचाव और अच्छाई को प्रेरित करने वाले फिल्मों को प्रश्रय मिलना चाहिए। जन-माध्यम समाज को बनाने का साधन हो सकता है तो बिगाड़ने का भी। इसका उपयोग ठीक से करना चाहिए। भारत के फिल्म उद्योग के उत्पादनों के प्रति अफगानिस्तान में शुरू से आकर्षण रहा है वहाँ के आम-आदमी भारत के प्रधानमंत्री का नाम भले न जाने अभिनेता-अभिनेत्रियों के नाम और चेहरे जरूर पहचानते हैं। भारत की आम जनता अपने देश के प्रधानमंत्री का नाम और चेहरा पहचानती है लेकिन देश के वैज्ञानिकों, विद्वानों, उत्कृष्ट साहित्यकारों को नहीं जानती। मोटेतौर पर ये तीन स्तर हैं इनमें जनता की रूचि का क्रमशः विकास होता जाए तो मानना चाहिए कि जनजीवन में वैचारिक उन्नति हो रही है।

सामान्य जन-जीवन के बौद्धिक विकास की पहली सीढ़ी मनोरंजन को तोड़ देने के बाद कल्पना की जा सकता है कि समाज को पतन किस हद तक जाएगा। लोक रूचि को ऊपर उठाने के लिए ध्वंसात्मक रास्ता अनुचित होता है। लोक रूचियों में ही सर्वाधिक लोग जिन्दगी का अनुभव करते हैं। इसी का जीता जागता प्रमाण अफगानिस्तान में तब दिखाई पड़ा जब तालिबानी पाबंदी का खातमा हुआ। फिल्म, टी.वी., रेडियो जैसे जन-माध्यम पुनः शुरू हुए लोगों ने आजादी के पहले पायदान का सीधा अहसास किया जैसे घुटन भरे कमरे की खिड़की खुल गई हो और नदी के लहरों को छूकर बहने वाली ताजा-नम हवा कमरे में आने लगी हो। ■

अंतरिक्ष वैज्ञानिकों ने स्वदेशी तकनीक का परचम पुनः लहराया

२२ अक्टूबर को दिन में १० बजकर २३ मिनट पर श्रीहरिकोटा प्रक्षेपण केन्द्र से दो विदेशी तथा एक स्वदेशी उपग्रह का प्रक्षेपण ध्रुवीय उपग्रह प्रमोचक यान (पी.एस.एल.वी.) सी-३ के द्वारा किया गया। यह प्रक्षेपण पूर्णतः सफल रहा। तीनों उपग्रह अपने नियत कक्षाओं में स्थापित हुए। सफल प्रक्षेपण के साथ ही भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) ने अपने प्रमोचकों के विश्वसनीय होने को प्रमाणित किया। इस प्रक्षेपण में छोड़े गए तीन उपग्रहों में 'जर्मनी' का ९२ किग्रा वजन का 'बर्ड', 'बेल्जियन' का ९४ किग्रा वजन का 'प्रोबा' तथा स्वदेश निर्मित ११०८ किग्रा वजन का प्रौद्योगिकी परीक्षण उपग्रह 'टीईएस' था।

पीएसएलवी की यह लगातार पाँचवीं सफल उड़ान थी। यह यान २९४ टन, चार चरणों वाला तथा ४४ मीटर ऊँचा है। इसके सफल प्रक्षेपण भारत की उपग्रह प्रक्षेपण बाजार में स्थिति मजबूत होगी। यह पीएसएलवी का दूसरा वाणिज्यिक प्रक्षेपण था। पहला वाणिज्यिक प्रक्षेपण पीएसएलवी-२ का था जिससे जर्मनी का 'तुबतस' और कोरिया का 'कित्सत' उपग्रह छोड़ा गया था। यह प्रक्षेपण २६ मई १९९९ को हुआ था। भारतीय उपग्रह 'टीईएस' सैनिक उपयोग के लिए भी है। अक्टूबर में तीन राष्ट्रों – अमेरिका (दो बार), रूस तथा भारत ने अपने जासूसी उपग्रह अंतरिक्ष में स्थापित किए हैं। भारत ने पहली बार कोई जासूसी उपग्रह छोड़ा है। इसकी रिजोल्यूशन क्षमता १ मीटर है। जो इसे सैनिक क्षेत्र में उपयोग बनाएगी। यह उपग्रह कारगिल युद्ध के बाद ही छोड़ा जाना तय हुआ था। 'टीईएस' से लोगों (सैनिकों तथा आतंकवादियों) के छोटे से छोटे समूह तथा छोटे-छोटे सैनिक उपस्थिति को भी पहचाना जा सकता है। इसे सन-सिनक्रोंनस कक्षा में स्थापित किया गया है अर्थात् यह एक निश्चित समय पर एक निश्चित स्थान के ऊपर से गुजरेगा। इससे प्रतिदिन उस स्थान पर होने वाले परिवर्तनों को नोट किया जा सकेगा।

सैनिक इमेजिंग के चार स्तर होते है – डिटेक्टशन, आईडेन्टीफिकेशन, रिकॉगनीशन तथा डिस्क्रीपशन अर्थात् ढूँढना, तादात्म्य स्थापित करना, पहचानना तथा व्याख्या करना। 'टीईएस' इनमें से पहले तीन कार्यों को आसानी से कर सकता है। विशेषकर सैनिक उपकरणों तथा वाहनों के लिए। लेकिन भारत को इससे उन्नत उपग्रहों (ज्यादा रिजोल्यूशन क्षमता अर्थात् २ सेमी की क्षमता वाले कैमरों) की आवश्यकता है ताकि यह विश्लेषण किया जा सके कि टैकों पर कौन से गन लगे हैं या समूह आतंकियों का है या सैनिक का। इस तरह की क्षमता वाले उपग्रह रूस एवं अमेरिका के पास हैं जिनकी रिजोल्यूशन क्षमता २ सेंटीमीटर की है। इस तुलना में भारतीय उपग्रह उतना विकसित तो नहीं है फिर भी इसे क्षेत्र में यह एक बड़ा कदम है। उम्मीद है कि भारतीय वैज्ञानिक इससे कहीं ज्यादा क्षमता वाले स्वदेशी उपग्रह तैयार करेंगे। ■

Scanned with OKEN Scanner

दोहा और कतर

■ त्रिशूलपाणि

कबीर का दोहा-रहीम का दोहा, दोहा आज के किसी नए कवि का – सुनने को मिला ही होगा आप को। इसीतरह कतरना और कतरन भी आप जानते होंगे। केश कतरना, जेब करतना इसी कतरना क्रिया से संबंधित है। जेबकतरा संज्ञा भी इसी से बनी है। जेब कतरों से सावधान – बसों के भीतर लिखा हुआ आपने देखा होगा। दोहा से कतर का आपसी संबंध क्या हो सकता है? यदि यह सवाल पत्र-पत्रिका, राजनीति, बाजार – व्यवसाय से दूर रहने वाले किसी निपट-निराले आदमी से पूछा जाए तो वह कुछ देर तक सोचने के बाद बता सकता है कि कवि दोहा सुनाने में लगा था और मंत्रमुग्ध स्रोताओं की जेब काटने में कोई जेब कतरा सक्रिय भूमिका अदा कर रहा था। क्या इसप्रकार का कोई संबंध दोहा और कतर के बीच निकला जा सकता है?

इस तुकदार विचार पर हँसिए नहीं, इसमें सच्चाई है। दिल्ली के एक सांध्य समाचार पत्र में कुछ वर्ष पहले एक खबर छपी थी। किसी न किसी बड़े मतलब से अखबार पढ़ने वाले लोग इस खबर को शायद ही महत्व दिए हों। लेकिन मैं त्रिशूलपाणि – न क्रिकेट का व्यर्थ स्कोर गिनता हूँ और न राजनीतिक समीकरण विचारता हूँ, न बाजार भाव, न राशिफल देखता हूँ। इसलिए जब वह खबर मेरे सामने आई तो इतना प्रभावित हुआ कि मैं उसे आज तक नहीं भूल पाया। उस खबर का शीर्षक था 'लड़की ध्यान बाँटती है, लड़का जेब काटता है'। मैं आज भी इस जोड़ी की प्रशंसा करने को मजबूर हूँ। भगवान सबको इसी तरह की जोड़ी दें। ऐसा ही सहयोगी दाम्पत्य जीवन सुखी हो सकता है। इसीमें कर्म और लक्ष्य की युगलबंदी भी है। पर, यह जरूर है कि जेवकतरों की यह जोड़ी दुष्कर्मी होने के कारण दंडनीय है। इनका काम गलत है, इनके संबंध का तालमेल नहीं। यदि दोहा सुनने वाला कवि आकर्षण पैदा करता है, स्रोताओं को मुग्ध करता है, उनका ध्यान खींचता है और जेबकतरनेवाला करामाती लोगों की कमाई लूटता है तो यह भी दंडनीय अपराध है। यदि यही काम देश की कोई सरकार करे मसलन मय कॉंग्रेस अन्य किसी भी पार्टी की कोई सरकार, संसद में देश के भविष्य का निर्णय हो रहा हो, नए नए कानून बन रहे हों – पूँजीपतियों के दबाव में, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हित में, गाँव-गाँव के किसानों को प्रभावित करनेवाले, उद्योग-धंधों को चौपट कर आर्थिक गुलामी लानेवाले और इसके विषय में रेडियो के प्रधान समाचार प्रसारण में कोई चर्चा न हो, अखबार इस पर चुप हो जाए, पत्रिकाएँ कोई समीक्षा न करें और इसके उलट रेडियो के प्रधान समाचार प्रसारण में क्रिकेट की कहानी सुनाई जाए, अखबार विदेशी मॉडलों का अंग प्रदर्शन परोसें, पत्रिकाएँ फिल्म का रंगोआब बखाने, तब इसमें भी वही फार्मूला दिखाई देगा यानी लड़की ध्यान बाँटती है, लड़का जेब काटता है। जनता का ध्यान बाँटकर देश का हित नीलाम कर देना दंडनीय क्यों नहीं होना चाहिए? फिल्मी दृश्यों-गीतों से समाज को लैला-मजनू बनाने वाला कोई निर्माता यह करामात करें तो उसे इस सूत्र के आलोक में संदिग्ध मानना होगा और उन सभी सूचना माध्यमों को भी जो अपने दायित्व को राष्ट्रहित की कसौटी पर नहीं कसते।

ध्यान बाँटने वाले तत्व और स्वार्थ सीधने करनेवाले तत्व दोनों ही दोहा, कतर में संपन्न हुई विश्व व्यापार संगठन की बैठक में थे। अरवीदेश में एक देश है कतर, कतर की राजधानी है दोहा यहीं पर विश्व व्यापार संगठन के विकसित और विकासशील देश आर्थिक मामलों के विचार के लिए उपस्थित हुए। इस बैठक में विकसित देश दोहा पढ़ रहे थे और विकासशील देशों की जेबें कतर लेना चाहते थे। आपके सुनने में भी आया होगा कि विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व व्यापार संगठन विश्व के कल्याण के लिए बने हैं। विश्व व्यापार संगठन के निर्देशक ने आर्थिक रूप से पिछड़े हुए देशों को विकसित कर हराभरा खुशहाल बनाने के लिए मसविदा बनाया था। उनके एजेंडे में विशेष रूप से विकासशील देशों का हित निहित था। लेकिन देखिए, आर्थिक रूप से जागरूक भारत के वाणिज्य मंत्री ने उनकी नए दौर की कल्याणकारी योजनाओं पर आपत्ति जताई, प्रधानमंत्री की प्रेरणा से यह काम हुआ। हमें इन्हें धन्यवाद देना है। पर, अभी रुक कर, सोंच समझकर यह काम करना होगा। विश्व व्यापार संगठन वैश्विक संगठन है। यह बहुत ताकतवर है इसमें दुनिया के समृद्धतम देशों की उत्तम खोपड़ियाँ सक्रिय हैं अमेरिकी और यूरोपीय दोनों प्रकार की मजबूत प्रतिभाएँ जब एक ही शिकार पर टूट पड़ीं हों तव क्या इनका दोहा साधारण होगा? उस दोहा का प्रभाव किसी नाभिकीय अस्त्र से कम नहीं होगा। इस बैठक में भी इन विकसित देशों ने मंत्र-मुग्ध करने के लिए बहुत असरदार दोहा पढ़ा है, कुछ-न-कुछ असर तो होगा ही। दोहा का असर होगा तो कतर भी होगा। इसलिए परिणाम देखकर निर्णय लेना चाहिए धन्यवाद देने का। हाँ, इतने के लिए धन्यवाद कि पहली बार चौथी बैठक में जाकर भारत ने अपना पक्ष रखा और विकासशील देशों का लगभग प्रतिनिधित्व किया। अमेरिका और यूरोपीय संघ के सामने विकास के झूठे दोहों को दरकिनार कर अपनी बातें रखी।

दोहा और कतर का भेद समझकर सही निर्णय करने के लिए निर्मल बुद्धि चाहिए जो किसी से प्रभावित न हो। तभी देश के करोड़ों प्राणियों का हित करने का पुनीत कर्म हो सकता – तभी राज्य व्यवस्था के सुख-साधनों का भरपूर भोग करने वाले नेता सार्थक होकर इतिहास में यशान्वित हो सकेंगे अन्यथा लड़की ध्यान बाँट गई तो लड़का जेब काट खाएगा। ■

Scanned with OKEN Scanner

अमेरिका को हमारी ज्यादा जरूरत है

पिछली सरकारों द्वारा देश की संप्रभुता को दाँव पर लगाते हुए किए गए विश्व व्यापार संगठन के समझौतों और मात्रात्मक प्रतिबंधों को हटाने के निर्णय से देश दिन-प्रति-दिन संत्रस्त दशा में पहुँचता जा रहा है। भारतीय संसद विभिन्न कानूनों के लिए बाध्य हुई है पेटेंट कानून संशोधित किया जा रहा है। पौध किस्म बिल और जैव-विविधता बिल को पारित किया जाना हमारी क्षरित संप्रभुता को ही रेखांकित किया है।

सियटल सम्मेलन की असफलता के बाद विकसित देश (विशेषकर अमेरिका) व्यापार समझौतों के नए दौर के लिए दबाव बना रहे हैं। कृषि में निवेश का कानूनी अधिकार, वस्त्र, सामाजिक मुद्दे, श्रम मानक, बाल मजदूरी, एण्टी डम्पिंग शुल्क, आर्थिक सहायता विरोधक कानून, विश्व व्यापार संगठन के प्रति अनुरूपता, स्पर्धा नीति, गैट्स के अंतर्गत सेवा संबंधी समझौतों की व्यापार सेवा, ट्रिप्स, पर्यावरण मानक, बौद्धिक सम्पदा एवं सूचना प्रौद्योगिकी उनके एजेण्टा में शामिल है। मंत्रिस्तरीय घोषणा-पत्र तथा उसके संशोधित ड्राफ्ट ने विश्व व्यापार संगठन को बेनकाब कर दिया है, जो केवल अमेरिका और दूसरे विकसित देशों के हितों पर केन्द्रित है। भारत सहित विकासशील देशों ने इसकी खुलकर भर्त्सना की है।

यह बात छिपी हुई नहीं है कि एक ओर तो विकासशील देशों को विश्व व्यापार संगठन के अनुरूप टेरिफ घटाने, मात्रात्मक प्रतिबंध उठाने और पेटेंट संबंधी कानूनों को बदलने और यही नहीं विकसित देशों के लिए अपने बाजार को पूरी तरह खोलने को बाध्य किया जा रहा है। दूसरी ओर विकसित देश न केवल ऊँची टेरिफ ला रहे हैं, कृषि में भारी आर्थिक सहायता दे रहे हैं, बल्कि विकासशील देशों के उत्पादों को अपने देश में आने से रोकने के लिए एण्टी डम्पिंग कानूनों का भरपूर उपयोग भी कर रहे हैं। ऐसा लगता है कि भारत सरकार पिछले अनुभवों से काफी सीख ले चुकी है। प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी की प्रेरणा से डॉ. मुरासोली मारन का जी-७७ राष्ट्रों के वाणिज्य मंत्रियों को विश्व व्यापार संबंधी विषयों में एकजुट होकर खड़ा होना, विश्व व्यापार संगठन को घरेलू सहायता, बाजार-पहुँच, निर्यात तथा खाद्य सुरक्षा के क्षेत्रों में प्रस्ताव भेजा जाना और विदेशी निवेशकों के लिए न्यूनतम भारतीयकरण की माँग, ताकि देश की विकास आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके, सही दिशा में उठाए गए कदम है।

विकसित देशों में विशेषकर अमेरिका की धौंस से भारतीय प्रतिनिधिमण्डल के सख्त कदमों का भरपूर औचित्य है। भारतीय मजदूर संघ, भारतीय किसान संघ, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् और स्वदेशी जागरण मंच डॉ. मारन के नेतृत्व में दोहा वार्ता में शामिल भारतीय प्रतिनिधि मण्डल द्वारा किए जा रहे राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा के कार्य में अपना पूर्ण समर्थन व्यक्त करते और अपनी पूर्व माँगों को दुहराते हैं कि –

1. कृषि और सेवा संबंधी विश्व व्यापार समझौतों पर पुनर्विचार, भारतीय कृषि उत्पादों की यूरोपीय संघ तथा अमेरिका में बाजार पहुँच, वस्त्र उद्योग के संरक्षण के उपाय, श्रमिकों का खुला आवागमन, सेवा उपलब्ध करने वालों के लिए वीजा, वर्तमान विश्व व्यापार समझौतों की विसंगतियों और असंतुलनों को ठीक करना, अमेरिका तथा यूरोपीय संघ द्वारा वस्त्र क्षेत्र के कोटा समाप्त करना, एण्टी डम्पिंग शुल्क लगाने के संदर्भ में पारदर्शिता, ट्रिम्स और ट्रिप्स समझौतों में परिवर्तन, तकनीकी तथा सूचना प्रौद्योगिकी हस्तांतरण तथा सबसे महत्वपूर्ण है पहले से निर्धारित किए कार्यों को पूरा किया जाना।
2. यदि भारत की अपेक्षाओं की पूर्ति विश्व व्यापार संगठन में नहीं होती तो सम्मेलन से बाहर चले आना, विकसित देशों को अपने दृढ़ निश्चय के प्रदर्शन से एक नए समीकरण की ओर एक महत्वपूर्ण कदम होगा कि यदि विकासशील देशों को समान ढंग से व्यवहार नहीं मिलता तो ये सभी देश विश्व व्यापार संगठन से बाहर आ जाए और एक दूसरा विश्व व्यापार संगठन बनाएँ।

हमें जितनी अमेरिका की जरूरत है उससे कहीं अधिक अमेरिका को हमारी जरूरत है।

(भारतीय मजदूर संघ, भारतीय किसान संघ, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् तथा स्वदेशी जागरण मंच की प्रेस विज्ञप्ति)

Scanned with OKEN Scanner

(पृष्ठ ११ का शेष....)

कितनी सफल रही............

चर्चा की गयी थी और कहा गया कि इन पर पाँचवें मंत्रिस्तरीय सम्मेलन के बाद चर्चा की जाएगी। इस स्पष्टीकरण के बाद भारत ने इस घोषणा-पत्र को स्वीकार किया। इस समझौते के साथ ही यह सम्मेलन पूरा हुआ। सम्मेलन के पूरा होने के बाद पुनः अमेरिका और यूरोपीय संघ ने अपना गिरगिट की तरह रंग बदलना जारी रखा। अमेरिका ने अध्यक्ष के स्पष्टीकरण के दीर्घावधि में किसी तरह के परिणाम पर प्रश्नचिन्ह लगाया। उन्होंने कहा कि केवल घोषणा पत्र ही आगे की वार्त्ताओं का आधार होगा। वही यूरोपीय संघ ने भी अध्यक्षीय स्पष्टीकरण को बेकार माना और कहा कि इस पूरे प्रकरण में जीत उनकी हुई है। उन्होंने भारत एवं अन्य देशों के दबावों के बावजूद कृषि में वार्ताओं के कृषि परिणामों को अंततः किसी नतीजे तक नहीं पहुँचने दिया।

सिंगापुर मुद्दो को टलवाने के अतिरिक्त भारत को ट्रिप्स तथा एंटी डम्पिंग मुद्दों तथा कृषि पर लाभ मिला। वहीं पर्यावरण पर भारत को पीछे हटना पड़ा। कार्यान्वयन संबंधी ९३ मुद्दों में से ४१ पर फैसला हुआ। यह भी भारत की एक उपलब्धि है कि जो चीजें इस बार मसौदे में नहीं थीं उन पर वार्ता करा ली गयी।

भारत ने ट्रिप्स में पेटेंट के दवाइयों की उपलब्धता पड़ रहे नकारात्मक प्रभावों की बात की और इसके उपायों की चर्चा की जिसे अंततः मान लिया गया और विकासशील राष्ट्रों को इसमें कुछ छूट मिली। लेकिन इन पेटेंट कानूनों से २० वर्ष तक के पेटेंट अधिकार को खत्म करवाना महत्वपूर्ण है तभी हम अपने देश में सस्ती दवायें आसानी से उपलब्ध करा सकेंगे। साथ ही समानांतर आयात व्यवस्था, अनुसंधान, आवश्यक लाइसेंस तथा रॉयल्टी संबंधी मुद्दों पर भी ट्रिप्स के कानूनों को और लचीला बनाना होगा। ट्रिप्स पर वार्ता की शुरूआत नकली उत्पादों से निपटने के प्रस्ताव के रूप में हुई थी। जिसने अब इतना व्यापक रूप ग्रहण कर लिया है और अब तो आशंका यह जताई जा रही है कि इतने कड़े ट्रिप्स प्रावधानों के कारण नकली उत्पादों की समस्या कहीं और न बढ़ जाए।

भारत ने इस वार्ता में अमेरिका द्वारा कपड़े के आयात में कोटा व्यवस्था लागू रखने पर भी आपत्ति की। पर उसे कोई लाभ नहीं मिला। अमेरिका ने पहले से तय समय सीमा १ जनवरी २००५ से पहले कोटा व्यवस्था हटाने से इनकार कर दिया साथ ही ज्यादा दबाव देने पर विभिन्न तरह के प्रतिबंध लगाने की भी धमकी दी। इस मुद्दे पर भारत को हानि हुई।

भारत ने यहाँ अमेरिका एवं यूरोपीय संघ द्वारा भारतीय निर्यातकों को हतोत्साहित करने के लिए उपयोग में लाए जा रहे एंटी डम्पिंग प्रावधानों का भी मुद्दा उठाया। नए प्रावधान विश्व व्यापार संगठन के मूल सिद्धांतों खुले व्यापार की नीतियों के विरुद्ध है। इसमें भी बदलाव के लिए भारत कोई आश्वासन लेने में विफल रहा। अमेरिका एवं यूरोपीय संघ ने इन्हें लागू करने में कड़े अनुशासन का आश्वासन तो दिया लेकिन परिवर्तन से मुकर गए। इसमें भारत को न तो लाभ हुआ न ही हानि हुई।

व्यापक रूप में इस वार्ता में ज्यादातर मुद्दों पर भारत तात्कालिक लाभ में रहा है। इस तात्कालिक लाभ को दीर्घावधि के लाभ में बदलना पड़ेगा और इसके लिए अपने राष्ट्रीय हितों की पहचान आवश्यक है। हम कभी भी विदेशी सहायता पर निर्भर होकर आत्मसम्मान की रक्षा नहीं कर सकते। हमें अपने घरेलू संसाधनों का विकास कर स्वदेशी को बढ़ावा देना होगा।

कृषि पर भारत ने यूरोपीय संघ एवं अन्य विकसित राष्ट्रों द्वारा अपने किसानों को भारी मात्रा में दी जा रही सब्सिडी को हटाने की बात की। विकसित देश कोई ३५,००० करोड़ डॉलर की वार्षिक सब्सिडी अपने किसानों को दे रहे हैं। इसके लिए ८० प्रतिशत सब्सिडी यूरोपीय संघ अमेरिका और जापान दे रहे हैं। इस असमानता को इस तरह समझा जा सकता है कि सभी विकासशील देशों का कुल निर्यात १७,००० करोड़ डॉलर वार्षिक है वहीं विकसित ३५,००० करोड़ डॉलर की सब्सिडी दे देते हैं। यूरोपीय संघ ने चरणबद्ध तरीके से सब्सिडी में कटौती स्वीकार की। इससे लगभग ७०,००० करोड़ डॉलर के नए व्यापार का उदय हो सकता है। इसमें भारत के उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों को लाभ मिलने की पर्याप्त संभावना है।

पर्यावरण पर भारत को हानि उठानी पड़ी। घोषणा-पत्र में 'व्यापार एवं पर्यावरण की सहायक भूमिका' को स्वीकार किया गया है और इस पर बातचीत शुरू करने का प्रस्ताव है। इसका असर निर्यात पर पड़ने की संभावना है।

व्यापक रूप में इस वार्ता में ज्यादातर मुद्दों पर भारत तात्कालिक लाभ में रहा है। इस तात्कालिक लाभ को दीर्घावधि के लाभ में बदलना पड़ेगा और इसके लिए अपने राष्ट्रीय हितों की पहचान आवश्यक है। हम कभी भी विदेशी सहायता पर निर्भर होकर आत्मसम्मान की रक्षा नहीं कर सकते। हमें अपने घरेलू संसाधनों का विकास कर स्वदेशी को बढ़ावा देना होगा। लोगों में जन-जागृति पैदा करनी होगी कि "राष्ट्रहित में स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करें तभी हम इस वैश्विक लहर में बच पाएँगे। अगर हम विदेशी सहायता पर निर्भर रहेंगे तो हमारे उद्योग धंधे बंद हो जाएँगे, कृषि समाप्त हो जाएगी और आर्थिक गुलामी ही हमारा

Scanned with OKEN Scanner

भविष्य होगा। स्वदेशी उत्पादन तथा स्वदेशी उत्पादों का उपभोग ही आर्थिक गुलामी के इस जाल (विश्व व्यापार संगठन) से हमारी रक्षा कर सकता है। वरना हमारी दिशा भी पंचतंत्र में वर्णित कबूतरों की कहानी की तरह होगी जिसमें सभी ये तो गाते हैं 'शिकारी आएगा जाल बिछाएगा, दाना डालेगा, जाल में फँसना नहीं'' लेकिन फिर भी उसमें फँस जाते हैं।

विकसित देश वि.व्या.सं. को एक ऐसी आर्थिक प्रशासकीय इकाई बनाना चाहते हैं जिसकी कमान उनके हाथों में हो। इसमें नित नए मुद्दे शामिल करते रहना द्वितीय विश्व युद्ध के बाद खत्म हो चुके आर्थिक उपनिवेशवाद की पुर्नस्थापना का प्रयास है। इसका पहला लक्षण अभी से सामने आने लगा है। ट्रिप्स के लागू होने के बाद की सभी प्राप्तियाँ कुल चार विकसित देशों को ही हुई हैं। बाकि पूरे दुनिया हक्की-बक्की खड़ी है। हमारे देश के लघु एवं मध्यम श्रेणी के उद्योग धंधे बंद हो रहे हैं वे विशालकाय बहुराष्ट्रीय निगमों का मुकाबला कैसे कर पाएँगे? कृषि में हमारे यहाँ ग्रीन बॉक्स का उपयोग करने के लिए धन नहीं है वहीं विकसित राष्ट्र इसका खुलकर उपयोग कर रहे है। इन्हीं गैर बराबरी की नीतियों के कारण विश्व व्यापार में विकासशील राष्ट्रों का योगदान घटता जा रहा है।

विकासशील राष्ट्रों को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को निर्देशित करने की आवश्यकता है। तभी वहाँ विदेशी प्रत्यक्ष निवेश से लाभ मिल सकता है। इससे लाभ उठाने वालों में चीन, ताइवान, दक्षिण-कोरिया इत्यादि हैं।

अंत में भारतीय रूख के कारण इस सम्मेलन में विकासशील राष्ट्रों को लाभ तो मिला लेकिन उनमें अगर एकता होती तो वे इसे एक यादगार सम्मेलन बना सकते है। केवल भारत कड़ा रूख अपनाकर इतना काम करा सकता है तो सभी देशों के सम्मिलित रूख से भविष्य में कोई भी परिणाम प्राप्त किया जा सकता है। ■

अब जॉन हॉपकिन्स विश्वविद्यालय (अमेरिका) के लिए भारतीय बने 'गिनी-पिग'

वाशिंगटन से प्राप्त संवाद के अनुसार जॉन हापकिन्स विश्वविद्यालय के एक वैज्ञानिक ने भारतीय रोगियों पर एक कैंसर की एक प्रयोगात्मक दवा का परीक्षण किया। इस दवा का नाम टॉक्सिक है। इसके लिए उसने भारत से या अमेरिकी संघ से या विश्वविद्यालय से किसी तरह की अनुमति नहीं ली। यह प्रयोग केरल में क्षेत्रीय कैंसर केन्द्र (आर.सी.सी.) पर किया गया। जिसमें पशुओं पर दवा का प्रयोग किए बिना सीधा इसका प्रयोग मनुष्यों पर किया गया।

ये परीक्षण नवम्बर १९९९ से अप्रैल २००० के बीच मुँह के कैंसर से पीड़ित २६ रोगियों पर केरल के आर.सी.सी. में किए गए। जुलाई २००१ में मीडिया में यह रपट आई कि ये प्रयोग अवैधानिक ढंग से किए गए। विश्वविद्यालय के प्रवक्ता डेनिश ओशेया ने एक वेबसाइट को बताया कि ये प्रयोग जीव वैज्ञानिक 'रु चीह हुआंग' ने किया था।

वैज्ञानिक ने इसके लिए भारत की तो बात ही नहीं है न तो अपने विश्वविद्यालय से और न ही अमेरिका के खाद्य एवं दवा प्रशासन (एफ.डी.ए.) से अनुमति प्राप्त की।

जुलाई २००१ में इसका भेद खुलने के बाद विश्वविद्यालय ने इसके जाँच के लिए एक समिति की स्थापना की जिसने पाया कि वैज्ञानिक ने गलती की है। और अंततः वैज्ञानिक को भविष्य में किसी भी तरह के मनुष्य से संबंधित प्रयोगों में शामिल रहने पर रोक लगा दी गयी।

इस प्रयोग में कैंसर के प्रयोगात्मक दवाओं का उपयोग किया गया था। इस पूरे खेल में सबसे महत्वपूर्ण तो यह है कि भारतीयों के प्रति अमेरिकीयों के मन में क्या भावनाएँ हैं? उन्होंने पशुओं के स्थान पर भारतीय नागरिकों का प्रयोग किया और अगर ये खबर मीडिया में भारतीय डॉक्टरों द्वारा नहीं लायी जाती तो वे इस पर कोई कार्यवाही नहीं करते। इस प्रयोग के कुछ दिन बाद एक युवा महिला की मृत्यु हो गयी थी।

ऐसे न मालूम कितने केसेज होते होंगे जिनकी कोई जानकारी नहीं है। ■

सीएसआईआर ने दमा की दवा विकसित की

वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सीएसआईआर) ने 'दमा दम के साथ ही जाता है' इस कहावत को बदलने का दावा किया है। इसके तहत एक ऐसी दवा का इजाद करने का दावा किया है जिससे दमे का इलाज संभव है। ऐसमोन नामक यह दवा जड़ी-बूटियों से तैयार की गयी है। महकमे का दावा है कि यह दवा दमा एवं अन्य श्वसन संबंधी बीमारियों के इलाज से अचूक साबित हो रही है।

सीएसआरईआर के वैज्ञानिक दलजीत सिंह बेदी के अनुसार संस्थान के कोलकता स्थित भारतीय रसायनिक जीव विज्ञान संस्थान (आईआईटीएफ) के वैज्ञानिकों ने अपने लगभग दो वर्षों के अथक प्रयासों से आम प्रयोग में लायी जाने वाली छह जड़ी-बूटियों से एक-एक मिश्रण तैयार किया है। इसका प्रयोग अब तक हजारों श्वसन एवं दमा रोगियों पर किया जा चुका है और परिणाम सकारात्मक रहे हैं। जिन मरीजों पर इस दवा का परीक्षण किया गया था, वह एलोपैथिक दवाओं पर निर्भर थे लेकिन अब वह धीरे-धीरे एलोपैथिक दवाएं कम कर रहे हैं। इस दवा का प्रदर्शन प्रगति मैदान में आयोजित अंतरराष्ट्रीय व्यापार मेले में भी होने वाला था। इस अवसर पर इस दवा को विकसित करने वाले कोलकाता स्थित संस्थान आईआईटीएफ के वैज्ञानिक भी उपस्थित रहेंगे।

श्री बेदी ने बताया कि कुछ तकनीकी औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद जल्दी ही इस दवा को बाजार में उपलब्ध कराया जाएगा। ■

Scanned with OKEN Scanner

झारखंड स्वदेशी मेले में स्वदेशी का परचम लहराया

● स्वदेशी संवाद

नए बने झारखंड राज्य की औद्योगिक राजधानी जमशेदपुर के गोपाल मैदान में भारतीय विपणन विकास केन्द्र द्वारा २६वें स्वदेशी मेले का आयोजन ११ अक्टूबर से १६ अक्टूबर तक हुआ। इस मेले के द्वारा आम जनता में संदेश प्रसारित करने का प्रयास किया जाता है कि हमारे ग्रामीण और लघु तथा कुटीर उद्योगों के उत्पाद किसी भी मानक के आधार पर विदेशी उत्पादों से उन्नीस नहीं है। हमारे यहाँ भी स्तरीय तथा विशिष्ट गुणवत्ता वाले उत्पाद बनते हैं यही दर्शाने का प्रयास किया गया था इस मेले में। यह मेला अपने लक्ष्य प्राप्ति में पूर्णतः सफल रहा। यहाँ के वासियों में इस मेले के प्रति कौतूहल था। इस मेले में लगभग १५० स्टॉल लगे थे। लोगों के कौतूहल का लाभ इन्हें भरपूर मिला तथा इनका उत्साह अच्छी बिक्री के कारण बढ़ा। लोग इस मेले में खरीददारी के साथ ही जानकारी भी प्राप्त कर रहे थे। इस मेले में नमक, हल्दी, तेल, आचार, चादर, तौलिये, कालीन से लेकर कम्प्यूटर यहाँ तक कि घरों के स्वदेशी मॉडल भी प्रदर्शित थे। वन-विभाग के स्टॉल पर वनौषधियों से संबंधित ज्ञान और लकड़ियों के गुणवत्ता की पहचान की जानकारी दी जा रही थी। टी.एस.आर.डी.एस. के स्टॉल आसपास के ग्रामीण हस्तशिल्पियों के कारीगरी को दर्शा रहे थे तो वहीं 'डूवाकरा' से लाभान्वित उद्यमी महिलाओं के उत्पाद भी थे। इस मेले ने लोगों के मन में स्वदेशी उत्पादों के प्रति किसी कोने में दबी आकांक्षा को उभार दिया जिसका परिणाम यहाँ लगी और आयी हुई दर्शकों के भारी भीड़ के रूप में सामने आया। मेले के प्रतिदिन शाम छः बजे से रात्रि दस बजे तक स्वदेशी विचार गोष्ठी एवं विविध सांस्कृतिक आयोजन हुए। इस मेले का उद्घाटन झारखंड के मुख्यमंत्री श्री बाबूलाल मरांडी ने किया। उन्होंने कहा कि 'स्वदेशी' एक वैचारिक आंदोलन है और स्वदेशी के बिना देश तरक्की नहीं करेगा। पश्चिमी जीवनशैली प्रकृति के विरुद्ध आचरण करने के प्रवृति को बढ़ावा देता है जबकि सच यह है कि हमारा पारंपरिक आचार व्यवहार हमें प्रकृति को निकटता प्रदान करता है जो स्वस्थ तन और स्वस्थ मन के लिए आवश्यक है।

इस समारोह में बोलते हुए स्वदेशी के क्षेत्रीय संयोजक अरुण ओझा ने स्वदेशी अभियान को आर्थिक आजादी के अभियान की संज्ञा दी और याद दिलाया कि पहला स्वदेशी मेला 'हिन्दू मेला' के नाम से १८६५-६६ में बंगाल में महर्षि अरविन्द के पितामह ने लगाया था। अमेरिका में कहा जाता है बी इंग्लिश। अमेरिकन, बाई इंग्लिश अमेरिकन। इस मेले ने हमें भी ऐसा ही कुछ करने की प्रेरणा दी। ■

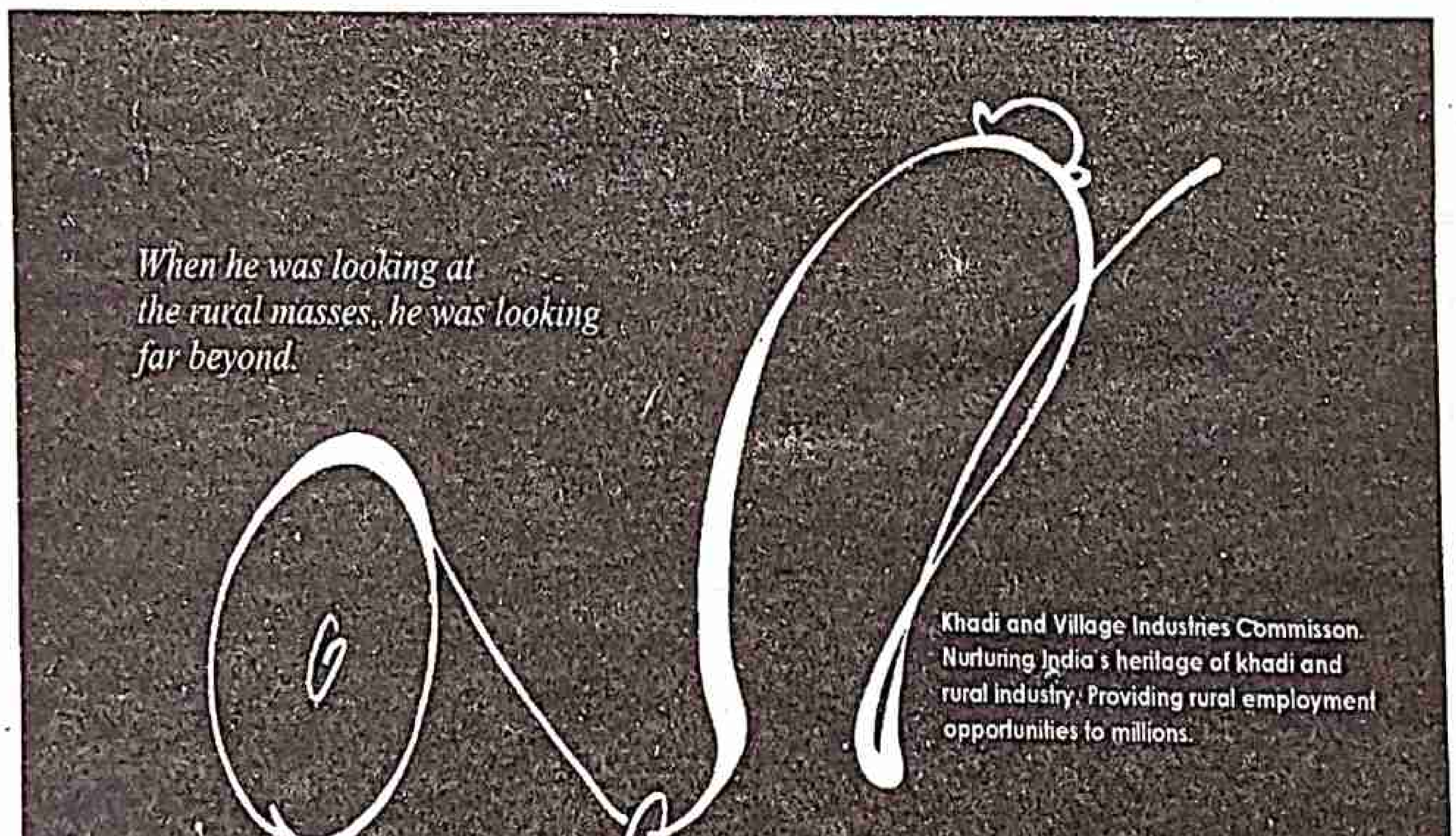

KHADI & VILLAGE INDUSTRIES COMMISSION
Gramodaya 3 Irla Road Vile Parle (W) Mumbai-400 056.
Phone : 022- 6716323 6714320 Fax : 91-22-6711003
e-mail : mktkvic@bom5.vsnl.net.in kvichq@bom3.vsnl.net.in Website : www.kvic.org.in

Scanned with OKEN Scanner

विकसित देशों की भूखी, ललचायी दृष्टि का नया निशाना : अश्वगंधा

नीम, बासमती, बैंगन, हल्दी इत्यादि के औषधिय गुणों तथा उत्पादों का पेटेंट करवाने के बाद अब अमेरिका और जापान में आयुर्वेदिक औषधि 'अश्वगंधा' के विभिन्न उपयोग वाले उत्पादों का पेटेंट कराने की होड़ मची है। इसके औषधिय गुणों का पेटेंट हो जाने के बाद इससे दवा तैयार करने वाले भारतीय उद्योगों को इसके लिए 'रॉयल्टी' अदा करनी पड़ेगा। भूषण पटवर्धन नामक एक भारतीय मूल के अमेरिकी नागरिक को इस पर पेटेंट दिया जा चुका है।

पेटेंट देते समय विश्व व्यापार संगटन के ट्रिप्स के नियमावलियों में एक शर्त 'विलक्षणता' को पूर्णतः नजरअंदाज किया गया है। अश्वगंधा का उपयोग सदियों से भारत में विभिन्न रोगों के निवारण हेतु तथा कई अन्य कार्यों जैसे स्मृतिवर्धक, कामोद्दीपक, प्रजनन क्षमता को बढ़ाने में, सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में, ऊर्जा प्रदान करने आदि के रूप में किया जाता है। भैषज्य रत्नावली, चरकसंहिता जैसे प्राचीनतम ग्रंथों में भी इसके प्रयोग की व्याख्या की गयी है।

भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के अनुसार चार जापानी तथा सात अमेरिकी कंपनियों ने इसके पेटेंट के लिए आवेदन किया है। इन कंपनियों ने प्रजनन क्षमता बढ़ाने के इसके गुणों तथा सौंदर्य प्रसाधन के रूप में इसके उपयोग पर पेटेंट की माँग की है।

भारतीय जड़ी-बूटियों पर पश्चिम की ललचायी नजर के कारण इन पर खतरे बढ़ते जा रहे हैं। विदेशों में इस तरह की बढ़ती घटनाओं के पीछे सरकार की सुस्ती भी है।

अपनी सरकार आग लगने के बाद पानी के स्रोतों की खोज करती है। नवभारत टाईम्स में २० नवम्बर को छपी एक रपट के अनुसार वरिष्ठ अधिकारी इन जड़ी-बूटियों के पेटेंट से चिंतित नहीं होते। पेटेंट के बारे में विदेशों में जाकर लड़ाई लड़ने को वे पैसे और समय की बर्बादी मानते हैं।

भारत में अभी भी जड़ी-बूटियों के पेटेंट पर स्पष्ट नीति का अभाव है। हमारे यहाँ हमारे बौद्धिक संपदा अधिकारों जैव-विविधता तथा जैव-संपदा के संरक्षण के कानून बनने चाहिए। साथ ही विश्व व्यापार संगठन में भी 'भौगोलिक संकेतकों' वाले अनुच्छेद में इन्हें शामिल करना चाहिए जहाँ पश्चिमी देशों ने केवल विभिन्न तरह की 'शराबों' को ही शामिल कर रखा है।

जिसके तहत दोहा दौर के बाद शैम्पेन नाम केवल फ्रांस में बने शराबों के लिए तय कर दिया गया। ■

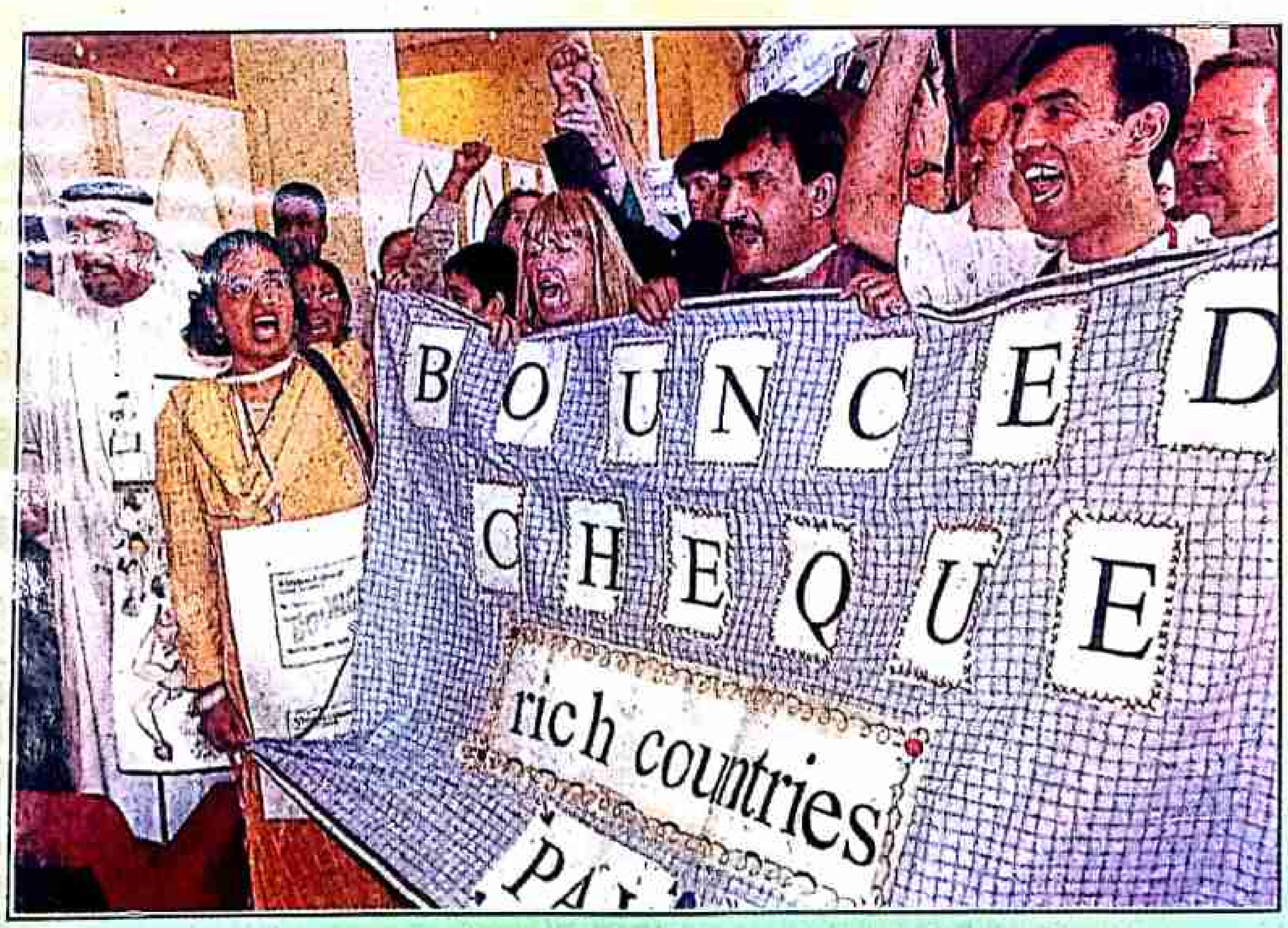

प्रधानमंत्री द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ में डब्ल्यू.टी.ओ. से फायदे के वायदे को बाउँस्ड चेक कहा जाना दोहा के डब्ल्यू.टी.ओ. विरोधी प्रदर्शनकारियों का मूल मंत्र बन गया।

Scanned with OKEN Scanner

झारखण्ड स्वदेशी मेला ११–१६ अक्टूबर २००१, जमशेदपुर

झारखण्ड में आयोजित स्वदेशी मेले के उद्घाटन समारोह
में मा० बाबूलाल मरांडी, मुख्यमंत्री (झारखण्ड सरकार)

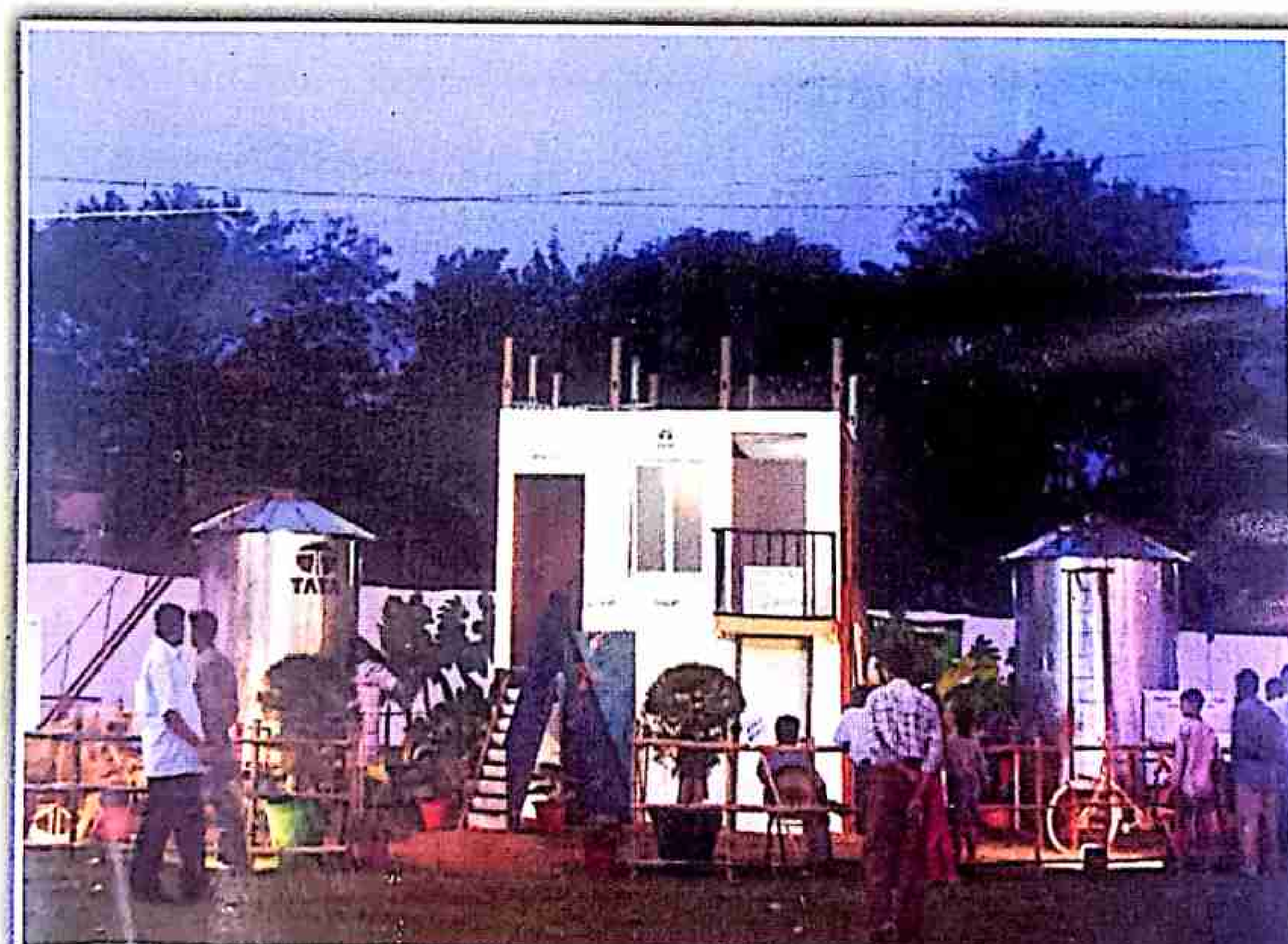

झारखण्ड स्वदेशी मेले में टाटा स्टील द्वारा प्रदर्शित स्टील हाऊस

ईश्वर दास महाजन द्वारा स्वदेशी जागरण फाऊंडेशन के लिए कुमार ब्रदर्स प्रिंटिंग प्रेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२ से मुद्रित एवं ६०, नॉर्थ एवेन्यू

Scanned with OKEN Scanner